हम सबकी पुस्तक माला—2

भारत छोड़ो आन्दोलन

शंकर दयाल सिंह

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

प्रथम संस्करण : ज्येष्ठ 1907 (मई 1985)
द्वितीय संस्करण : फाल्गुन 1908 (मार्च 1987)

मूल्य : 3 रुपये

निदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाउस, नई दिल्ली- 110 001 द्वारा प्रकाशित।

विक्रय केन्द्र ● प्रकाशन विभाग

- सुपर बाजार (दूसरी मंजिल), कनाट सर्कस, नई दिल्ली- 110 001
- कामर्स हाउस, करीमभाई रोड, बालार्ड पायर, बम्बई- 400 038
- 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता- 700 069
- एल.एल. आडीटोरियम, 736 अन्नासलै मद्रास- 600 002
- बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना- 800 004
- निकट गवर्नमेंट प्रेस, प्रेस रोड, त्रिवेन्द्रम- 695 004
- 10 बी, स्टेशन रोड, लखनऊ- 226 004
- स्टेट आर्किलॉजिकल म्यूजियम बिल्डिंग, पब्लिक गार्डन्स, हैदराबाद- 500 004

ए.जे. प्रिंटर्स, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली- 2 द्वारा मुद्रित।

क्रांति का जन्म

प्रत्येक घर में जन-जन तक सस्ते मूल्य पर अच्छा साहित्य उपलब्ध कराने के उद्देश्य से प्रकाशन विभाग द्वारा प्रारंभ की गई 'हम सब की पुस्तकमाला' के अंतर्गत यह पुस्तक आपके हाथ में है।

युवा पीढ़ी को देश के स्वतंत्रता आंदोलन से अवगत कराने के उद्देश्य से इस श्रृंखला को शुरू किया गया था। हिंदी में ऐसी 10 पुस्तकें प्रकाशित की जा रही हैं। श्री मन्मथनाथ गुप्त द्वारा लिखित हमारी प्रथम पुस्तक 'क्रांतिकारियों की कहानियां' में देश के बलिदानी वीरों की गाथा पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है और अब यह पुस्तक 'भारत छोड़ो आंदोलन' स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास के उस स्वर्णिम परिच्छेद से संबंधित है जिसने देश को आज़ादी की देहरी तक पहुंचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

1942 की क्रांति इस देश के इतिहास में वही स्थान रखती है जो फ्रांस या रूस की क्रांतियों का अपने-अपने देशों में है। इतने विशाल जन-समुदाय ने विश्व के किसी भी देश में इतनी बड़ी क्रांति में इतने बड़े पैमाने पर भाग नहीं लिया था। इस क्रांति ने देश की कायापलट कर एक नये भारत का निर्माण किया, उसकी राजनीति को एक नयी दिशा प्रदान की और प्रदान किया असहयोग का पथ जिसका अद्भुत परिणाम था भारत की स्वतंत्रता। अहिंसक युद्ध का यह चमत्कार आज भी सारे विश्व को चमत्कृत किए हुए है। 1942 हर दृष्टि से राष्ट्रीय संग्राम का एक अप्रतिम वर्ष कहा जाएगा क्योंकि अनेकानेक घटनाओं ने इस वर्ष एक प्रकार से सारे विश्व के भावी इतिहास को नया मोड़ दिया था।

आशा है, यह पुस्तक सभी पाठकों तथा विशेष रूप से युवा पाठकों के लिए प्रेरणाप्रद सिद्ध होगी।

डा. श्याम सिंह शशि

छुड़ा के गुलामी से भारत को फौरन,
तुम्हें इनसे बदला चुकाना पड़ेगा।

जो मालो-खजाना वो ढो ले गये है,
उसे फिर से वापस दिलाना पड़ेगा।

हुए हैं शहीदे वतन जितने अब तक,
उन्हें फिर से जग में बुलाना पड़ेगा।

—लोकगीत की एक कड़ी

भारत न रह सकेगा, हरगिज गुलाम खाना,
आज़ाद होगा, होगा आता है वह ज़माना।

खूं खौलने लगा है हिन्दोस्तानियों का,
कर देंगे ज़ालिमों का हम बंद जुल्म ढाना।

कौमी तिरंगे झंडे पर जां निसार अपनी,
हिन्दू मसीह मुस्लिम गाते हैं वह तराना।

अब भेड़ और बकरी बन कर न हम रहेंगे,
इस पस्त हिम्मती का होगा कहीं ठिकाना।

परवाह अब किसे है जेल ओ दमन की प्यारो,
इक खेल हो रहा है फांसी पे झूल जाना।

भारत वतन हमारा, भारत के हम हैं बच्चे,
भारत के वास्ते है, मंजूर सिर कटाना !

— अमर शहीद रामप्रसाद 'बिस्मिल'

समर्पित—

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की
पावन-स्मृति को
जिन्होंने हाड़-मांस के पुतलों को
जीना और मरना सिखलाया !

अनुक्रम

स्वतंत्रता-संग्राम का इतिहास और भारत छोड़ो आन्दोलन

"मैं तो एक ही चीज लेने जा रहा हूं—आजादी ! नहीं देना है, तो कत्ल करें। मैं वह गांधी नहीं, जो बीच में कुछ चीज लेकर आ जाए। आपको तो मैं एक मंत्र देता हूं -'करेंगे या मरेंगे'। जेल को भूल जाएं। सुबह-शाम यही कहें, कि खाता हूं, पीता हूं, सांस लेता हूं, तो गुलामी की जंजीर तोड़ने के लिए। जो मरना जानते हैं, उन्हीं ने जीने की कला जानी है। आज से तय करें कि आजादी लेनी है। नहीं लेनी है, तो मरेंगे। आजादी डरपोकों के लिए नहीं। जिनमें करने की ताकत है, वही जिन्दा रह सकते हैं। हम चींटियां नहीं, हम हाथी से भी बड़े हैं, हम शेर हैं।"

(8 अगस्त 1942 की रात में कांग्रेस-महासमिति के सामने 'भारत छोड़ो आन्दोलन' प्रस्ताव पर बोलते हुए गांधीजी)

कांग्रेस की स्थापना के बाद से स्वतंत्रता-संग्राम के इतिहास का अर्थ ही है कांग्रेस का इतिहास और गांधीजी के आने के बाद घटनाएं जिस प्रकार से वृत्त में घूमती रहीं, उसके आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि कांग्रेस तिहास (कम-से-कम 1947 तक का) गांधी का इतिहास है। ऐसा इसलि हा हूं कि इतिहास तिथियों और घटनाओं का इतिवृत्त मात्र नहीं होता चरित्रों का आकलन भी होता है। गांधीजी एक ऐसे ही चरि ओं के साथ ही उस युग के अन्य सभी चरित्रों को अपने वृत्त में केन्द्रबिन्दु बने रहे। यों गांधीजी ने विधिवत् कांग्रेस के मह।

1916 में भाग लिया था और तब से तीन-चार वर्षों के अन्तर्गत ही यह बात साफ जाहिर होने लगी कि कांग्रेस को तथा देश को जिस नेतृत्व की तलाश थी, उसकी पूर्ति के लिए ही मोहनदास करमचन्द गांधी दक्षिण-अफ्रीका से भारत आ गए हैं। 1920 के नागपुर-अधिवेशन में यह बात प्रत्यक्ष हो गई, जब गांधीजी के निर्देशन में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपना ध्येय सभी उचित तथा शान्तिपूर्ण उपायों से पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति घोषित किया और अपनी मांगों को मनवाने के लिए सरकार के प्रति अहिंसक असहयोग की नीति बरतने का निश्चय किया, और तभी से कांग्रेस की बागडोर गांधीजी के हाथ में आ गई।

1942 का 'भारत छोड़ो आन्दोलन' कांग्रेस के क्रमिक संघर्ष का ही एक विकसित रूप है। 1917 और 1918 में चम्पारण की भूमि में गांधीजी द्वारा निलहे साहबों के खिलाफ सत्याग्रह-आन्दोलन, 1919 और 1920 का असहयोग आन्दोलन, रॉलट-एक्ट, जलियांवाला बाग हत्याकांड, खिलाफत-आन्दोलन, 1930 और 1932 का नमक-सत्याग्रह, लगानबन्दी आन्दोलन, दांडी-यात्रा आदि घटनाओं को एकसाथ मिलाकर देखने से 1942 की क्रांति की तस्वीर हमारे सामने साफ हो सकेगी।

इतिहास और कांग्रेस का इतिहास, ये दो विषय है या एक, जब-तब मैं इस विषय पर सोचता रहा हूं और मुझे इस संदर्भ में रोशनी मिली है कांग्रेस के सबसे बड़े इतिहासकार डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या से। 'कांग्रेस का इतिहास' की प्रस्तावना में उन्होंने लिखा है—"इतिहास का विकास सारे संसार में सामान्य सिद्धान्तों पर होता है। विशिष्ट राष्ट्रों, देशों और राज्यों के विकास का मार्ग उनकी अपनी विलक्षण स्थिति में होता है। खासकर हिन्दुस्तान में इन स्थितियों का जन्म और विकास विचित्र रूप में हुआ है। एक ऐसे विस्तृत देश का, जो लम्बाई-चौड़ाई में महाद्वीप के समान और जमीन और आकृति में भिन्न है, लगभग दो शताब्दी तक पराधीन रहना एक ऐसी बात है, जिसका उदाहरण आधुनिक इतिहास में नहीं मिल सकता। इसके लिए संसार के इतिहास में हमें ...न पीछे तक मुड़ना पड़ेगा। ईसा की आरंभिक शताब्दियों में जब रोम ने एक

तक था और जो लगभग चार सदियों तक कायम रहा था। परन्तु इस पराधीनता के उदाहरण में एक जगह सादृश्य समाप्त हो जाता है। जब मुक्ति की प्रक्रिया आरभ होती है तो हिन्दुस्तान में यह पराधीनता एक ऐसा नितांत विरोधी रूप धारण कर लेती है, जैसा संसार के इतिहास में कहीं भी देखने में नहीं आता। हिन्दुस्तान में गत चौथाई सदी से घटनाओं ने जो रूप धारण किया है, वह ससार में अद्वितीय है और सत्य अहिंसा के सिद्धांतों का प्रयोग, जिसे संक्षेप मे सत्यग्रह कहते हैं, ऐसा है, जिसकी बहुत-सी मंजिलें और दर्जे है, जिनके द्वारा राष्ट्र का क्षोभ असहयोग से करबंदी तक सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के विभिन्न रूपों द्वारा प्रकाश में आया है। कांग्रेस की हमेशा यह राय थी कि युद्ध-प्रत्यनों हिन्दुस्तान का भाग लेना इस बात पर निर्भर करना चाहिए कि वह एक स्वतत्र राष्ट्र के रूप में जुटना अपना कर्त्तव्य समझे। संघर्ष का कारण स्पष्ट था। सविनय अवज्ञा आन्दोलन के लिए वातावरण तैयार था--जो देश के लिए लड़ने और साहसपूर्वक लड़ने के लिए एकमात्र मार्ग था। जिस प्रकार प्रशासन की योग्यता की कसोटी यह है कि जनता को स्वशासन प्रदान कर दिया जाए, उसी प्रकार सघर्ष के लिए योग्यता की कसौटी यही है कि देश को सघर्ष करने दिया जाए।"

उपरोक्त उद्धरण से एक परिस्थिति का ज्ञान होता है कि स्वतंत्रता-संग्राम के इतिहास की रूपरेखा क्या हो अथवा वे कौन-सी परिस्थितिया थीं, जिनसे हमारे विषय के इतिहास का निर्माण होता है। हमारा विषय है स्वतन्त्रता-संग्राम के इतिहास में भारत-छोड़ो आन्दोलन की भूमिका।

आगे बढ़ू, उसके पहले ही कह दूं कि इस संबंध में खुली आंखों से अनेक पुस्तकें उलट-पलट गया, लेकिन जहा जाकर मेरी दृष्टि गड़-सी गई वह पुस्तक है श्री गोबिन्द सहाय द्वारा लिखित- 'सन् बयालीस का विद्रोह'। विषय प्रवेश में लेखक ने विश्वास के साथ कहा है--"सन 1942 का 'खुला विद्रोह' पुराने सब प्रयत्नों से ध्येय, नीति-निपुणता, संगठन, बलिदान, विस्तार और जनोत्साह आदि सभी बातों में कहीं बढ़ा-चढ़ा है। सन् 1857 का गदर, फ्रांसीसी

सामने फीके जान पड़ते हैं। यह वह महान प्रयत्न था जिसमें प्रायः सभी भारतीय नवयुवकों ने, जिनके हृदय में जरा भी आजादी की कसक व तड़प बाकी थी, किसी न किसी रूप में हिस्सा लिया। यह वह सामूहिक प्रयत्न था, जिसकी चिनगारी गांव-गांव में फैल गई। ऐसा लगता था कि सारा राष्ट्र गहरी नींद से जागकर यकायक उठ रहा है।"

अतः हमारे लिए सबसे बड़ी दिक्कत यह है कि इस जीवित इतिहास को खंडहरों के इतिहास से कुछ अलग रखकर तोलें, परखें। तभी बात बनेगी। इसमें केन्द्रित होकर विकेन्द्रित होने की गुंजाइश है।

भारत छोड़ो आन्दोलन सही अर्थ में एक बड़ी क्रान्ति थी, जिसे विद्रोह भी कहा जा सकता है और ऐसी क्रांति या विद्रोह जनता की दबी आशाओं-आकांक्षाओं के बाह्य रूप होते हैं।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है कि स्वतंत्रता-संग्राम की वास्तविक रणभेरी 1857 में बजी, जिसमें रानी झांसी, तात्या टोपे, वीरवर कुंवरसिंह, नाना फड़नवीस, मंगल पांडेय जैसे अनेक वीर सामने आए तथा उन्होंने अपने बलिदान से इतिहास को प्रेरणा दी, लेकिन आजादी की लड़ाई की संगठित शुरूआत भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से हुई। हालांकि 1885 ई० में जब कांग्रेस की स्थापना हुई, उस समय से 1900 तक वह ब्रिटिश-सरकार से प्रार्थना, निवेदन और चिरौरी-विनती वाली पार्टी थी और उसके बाद लाल-बाल-पाल-अरविन्द घोष आदि के पदार्पण के साथ ही उसमें गर्म जोशी आई तथा प्रार्थना की जगह कुछ धमकियों और कड़े शब्दों का भी प्रयोग शुरू हुआ, लेकिन वास्तविक क्रमबद्ध लड़ाई शुरू हुई गांधीजी के आने के बाद। गांधीजी की सफलता का मुख्य रहस्य यह है कि उन्होंने कांग्रेस को मात्र बैद्धिकजनों की संस्था न रखकर आम-जन को इसमें शामिल होने का द्वार खोला। कांग्रेस का सुगठित संविधान बना, चार आने सदस्यता शुल्क निर्धारित हुआ तथा देहातों में 'मुठिया' की प्रथा भी जारी की गई। यानी हर परिवार कांग्रेस के लिए अपने घर में एक पात्र रख दे

और उसमें प्रतिदिन एक मुट्ठी अन्न डाल दे कांग्रेस अथवा देश के नाम पर।

इस तरह कांग्रेस की सबसे बड़ी शक्ति गांधी बने और गांधीजी की सबसे बड़ी शक्ति कांग्रेस बनी। दूसरे शब्दों में देश ने अथवा जनता ने गांधीजी को अपनाया और गांधी ने जन-साधारण को गले लगाया। गांधी नाम संज्ञा की जगह विशेषण हो गया और उसके इर्द-गिर्द एक प्रभा-मंडल बना देश के सभी योग्य सपूतों का--मोतीलाल नेहरू, सर तेज बहादुर सप्रू, भूलाभाई देसाई, जवाहरलाल नेहरू, डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, सरदार वल्लभ भाई पटेल, खान अब्दुल गफ्फार खां, राजगोपालाचारी, मौलाना आजाद, महादेव देसाई, जमनालाल बजाज, सरोजिनी नायडू विधानचन्द्रराय, प्रो० अब्दुल बारी, पट्टाभि सीतारामय्या, राजकुमारी अमृत कौर, वारदौलाई कोई तो ऐसा न था उस युग में जो गांधी-टीम का सदस्य न हो।

गांधीजी ने देश में न केवल राष्ट्रीय जाग्रति की शुरुआत की, वरन् ठोस कार्यक्रमों के आधार पर जर्जर राष्ट्र को निर्भय बनाना और संगठित करना शुरू किया। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि केवल शहरी पढ़े-लिखे लोगों तक ही उन्होंने अपने को सीमित नहीं रखा, बल्कि गांवों-देहातों में रहने वाले किसान--मजदूर-नौजवान सबों को जगाया, झकझोरा तथा आन्दोलन में उनको बड़ी भूमिका दी। तभी तो यह संभव हो सका कि 1942 के आन्दोलन में ग्रामीण किसानों-मजदूरों की संख्या 40 प्रतिशत थी।

1921 से लेकर 1941 तक बीस वर्षों के प्रशिक्षण के बाद गांधीजी ने अंत में 'करो या मरो' का नारा देते हुए आजादी की अन्तिम लड़ाई छेड़ दी। सही अर्थों में 'भारत छोड़ो आन्दोलन', जो अंग्रेजों, भारत छोड़ो की गुहार थी नारा न होकर संकल्प हो गया, प्रस्ताव नहीं प्रेरणा बना तथा बयान नहीं होकर व्यवहार हो गया।

1942 की क्रान्ति हमारी आजादी के इतिहास का सबसे सशक्त और ज्योतित परिच्छेद है। 8 अगस्त, 1942 को कांग्रेस द्वारा इस प्रस्ताव का पारित किया जाना, उसी रात कांग्रेस के सभी वरिष्ठ नेताओं को जेल के सींकचों में बंद कर दिया जाना, 9 अगस्त से जनता द्वारा स्वयं अपने हाथ में क्रांति की मशाल

को थाम लेना तथा सारे देश में 'अंग्रेज़ो भारत छोड़ो' तथा 'करेंग या मरग' का जयघोष !लेकिन इसके लिए देश को जो कुर्बानी करनी पड़ी और जितने जुल्म ढाए गए उसे याद कर हमारे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। उस समय के प्रत्यक्षदर्शियों ने बयान किया है कि बर्बर सरकार ने मनमाने ढंग से निहत्थी जनता को लूटा, सम्पत्ति को नष्ट किया, गांवों को जलाया, रुपया ऐंठा और पकड़ लेने की धमकियां दीं। बाजार की सभी दुकानें लूटी गईं, बच्चों को भी रौंदने से सरकार बाज नहीं आई तथा महिलाओं की इज्जत सरेआम लूटी गई।

इतना कुछ होते हुए भी थोड़ी-बहुत हिंसा की घटनाएं भले ही हुई हों, लेकिन यह लड़ाई अहिंसात्मक रूप से लड़ी गई, जिसके संबंध में बार-बार गांधीजी ने अपने प्रस्ताव में संकेत किया था। इसका मूल कारण था कांग्रेस द्वारा पिछले आन्दोलनों में दी गई ट्रेनिंग। यह आन्दोलन पिछले आन्दोलनों से बड़ा और समग्र इस मायने में भी था कि जहां अन्य आन्दोलनों के मुद्दे कुछ कानूनों एवं कतिपय रियायतों की मांगों को लेकर हुआ करते थे तथा उनकी भाषा भी अतिशय विनम्र होती थी, वहीं 1942 की क्रान्ति का एकमात्र मुद्दा था-'भारत छोड़ो' तथा गांधीजी जैसे व्यक्ति के द्वारा 'करो या मरो' का आह्वान जो जनता को चुम्बक की तरह अपनी ओर आकर्षित कर रहा था।

7 अगस्त, 1942 को यह प्रस्ताव जवाहरलालजी ने महासमिति के सामने प्रस्तुत करते हुए कहा था-"यह प्रस्ताव कोई धमकी नहीं है। यह तो एक निमंत्रण है। इसके द्वारा हमने यह बताया है कि हम क्या चाहते हैं। हमने सहयोग का हाथ बढ़ाया है। किंतु उसके पीछे एक साफ इशारा भी है कि यदि कुछ बातें न हुईं तो परिणाम क्या हो सकता है। यह स्वतंत्र भारत के सहयोग का दावतनामा है। किसी दूसरी शर्त पर हमारा सहयोग नहीं हो सकता।" इसके बाद बहुत दृढ़ता के साथ जवाहरलालजी ने कहा-"अब तो हम आग में कूद पड़े हैं। या तो सफल होकर निकलेंगे या उसी में जलकर भस्म हो जाएंगे।"

प्रस्ताव का समर्थन कर रहे सरदार वल्लभ भाई पटेल ने कहा-"सरकार चाहती है कि हम उसमें और उसके हथियारों में विश्वास करें। क्या हम उन्हीं

हथियारों का विश्वास करें, जिन्होंने बर्मा और मलाया के लोगों की रक्षा की ? क्या हम ऐसे ही भाग्य का स्वागत करें जो उनका हुआ ? वह उन देशों से भाग खड़ी हुई और वहां के लोगों को जापानियों के रहमों-कर्म पर छोड़ दिया। कौन जानता है कि वह हमें उसी तरह नष्ट और तबाह करके यहां से नहीं चली जाएगी। हम वादों पर कैसे विश्वास करें, जबकि धोखों का तांता लगा हुआ है।"

बैठक की सदारत तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष मौलाना अबुल कलाम आजाद कर रहे थे। उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम समस्या पर बोलते हुए मुस्लिम लीग पर कड़ा प्रहार किया—"जो लोग हिन्दू-मुस्लिम फैसले की बातें कहकर शोर-गुल मचा रहे हैं, अच्छा होता कि वे लीग का दरवाजा खटखटाते, जो हमारे लिए न केवल बंद कर दिया गया है, बल्कि जिसमें कीलें ठोक दी गई हैं।"

अंत में महासमिति में गांधीजी हिन्दी और अंग्रेजी में कुल मिलाकर ढाई घंटे बोले, जो आजादी के इतिहास का एक दुर्लभ दस्तावेज है। प्रत्यक्षदर्शियों का कहना है कि पूरे ढाई घंटे तक एक अजीब सन्नाटा रहा और ऐसा मालूम देता है कि उनके एक-एक शब्द में राष्ट्र की मर्म-चेतना अंगड़ाई ले रही है।

हर आदमी इस बात को जानता है कि प्रस्ताव पारित होने के बाद कांग्रेस के नेतागण दूसरे दिन का सूर्योदय खुली खिड़की से नहीं देख सके और सबके सब, जो जहां था वहीं नजरबंद हो गया। बचे वही, जो फरार हो गए। उसके बाद जनता ने, जिसमें सबसे अधिक संख्या नौजवानों और विद्यार्थियों की थी, उन्होंने आन्दोलन को अपने हाथ में ले लिया। हर जगह दीवारों पर एक ही नारा लिखा दिखाई देता था—"करो या मरो" और "अंग्रेजो, भारत छोड़ो !" मैंने पहले ही कहा है कि इसके लिए देश ने जो कुर्बानी दी, वही हमारा असली इतिहास है और ऐसे ही इतिहास की पंक्तियां स्याही से नहीं खून से लिखी जाती हैं। देश के कोने-कोने में आग लगी हुई थी, लेकिन उसमें भी महाराष्ट्र, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल और असम आगे थे। लगभग यही वे क्षेत्र हैं, जिन्होंने 1857 में अंग्रेजों के खिलाफ जनक्रांति की शुरुआत की थी। तबसे लगी आग, आज भी नहीं बुझी थी।

छोटे-छोटे बच्चों में भी विचित्र जागृति आ गई थी। इन्हीं बच्चों में इन्दिरा जी भी थीं, जिन्होंने इलाहाबाद में 'वानर सेना' की स्थापना की थी और रात-दिन इरा संकल्प में लगी थीं कि किस तरह का योगदान हम इस आन्दोलन में दें।

लेकिन पटना के नौजवानों ने तो अपने बलिदानों से इतिहास को भी थर्रा दिया था। नौजवानों की एक मतवाली टोली पटना सेक्रेटेरियट के सामने जुलूस के रूप में पहुंची। उसका जीवन्त वर्णन 'सन बयालिस का विद्रोह' से यहां प्रस्तुत किया जा रहा है–

"जुलूस आजादी के नशे में चूर सेक्रेटेरियट पहुंचा। सभी लोग अपनी जान हथेली पर लिए हुए थे। अतएव आजादी के इन दीवानों को कौन रोकने वाला था। जहां देखो, वहीं अजीब मस्ती थी। उधर आर्चर गोरखा सिपाहियों के साथ सेक्रेटेरियट के सामने डटा खड़ा था। फौजी लोग अपनी-अपनी भयावनी राइफलें लिए तैयार खड़े थे।

"मि० आर्चर ने गरजते हुए लोगों से पूछा–तुम क्या चाहते हो?

"–झंडा फहराना !एक छोटे से छात्र ने आवेश के साथ उत्तर दिया।

"–कौन झंडा फहराना चाहता है, वह जरा आगे आ जाए–आर्चर ने झल्लाकर कहा।

"देखते ही देखते ग्यारह छात्र जुलूस को चीरते हुए आगे आकर कतार में खड़े हो गए। उनका सीना गर्व के साथ आगे निकला हुआ था तथा आंखें क्रोध के मारे लाल हो रही थीं। आर्चर ने एक छोटे से छात्र की ओर संकेत करते हुए कड़ककर कहा–झंडा फहराना चाहता है, झंडा। झंडा फहराने से पहले अपना सीना खोल ले !

"आर्चर का कहना था कि उस छात्र ने दोनों हाथों से अपना कुरता फाड़ा और सीना खोलकर सामने कर दिया। वह कतार में से एक कदम आगे निकल आया।

"आर्चर उस लड़के के साहस की कदर नहीं कर सका। उसने तुरंत हुक्म दिया–गोली चलाओ !और उसी क्षण देखते-ही-देखते वे ग्यारहों वीर गोली के

शिकार हो गए। फिर से गोलियों की बौछार होने लगी। जनता पागल हुई पर डटी रही। इतने में जयघोष हुआ वंदेमातरम् ! अंग्रेजो, भारत छोड़ो ! लोगों की आँखें सेक्रेटेरियट के गुम्बद की ओर गईं। देखा, एक दुबला पतला नौजवान हाथ में तिरंगा झंडा लिए मुस्करा रहा है। अपार जनसमूह समुद्र की भाँति उमड़ पड़ा। उसका बलिदान सफल हुआ। कमीने फौजी उस समय तक वहाँ से हट चुके थे। सेक्रेटेरियट के गुम्बद पर लहराता हुआ तिरंगा झंडा। ऐसा प्रतीत होता था मानो वह आजादी के इन अमर शहीदों की विमल कीर्ति को हवा के झोंकों के साथ भू मंडल के इस कोने से उस कोने तक पहुँचा रहा हो।

"छह विद्यार्थियों की मृत्यु तो वहीं हो चुकी थी। बाकी चार अस्पताल ले जाए गए। एक को आपरेशन के लिए टेबिल पर लिटा दिया गया। कुछ देर के बाद उस की मूर्छा टूटी। उस बालक ने आतुर भाव से डॉक्टर से प्रश्न किया मेरे गोली कहाँ लगी है, पीठ पर या सीने में ? डॉक्टर लड़के के भाव को समझ गया। उसने गोली के घाव की ओर इशारा करते हुए कहा गोली सीने के बीच में लगी है ! लड़का कुछ मुस्कुराया और बड़े गर्व के साथ धीमे स्वर में बोला- अच्छा, लोग यह तो नहीं कहेंगे कि भागते हुए को गोली लगी थी ! बस, अंतिम शब्द के साथ उसके प्राण पखेरू इस नश्वर शरीर को त्यागकर उड़ गए। वह बालक तो आज दुनिया में नहीं है, किन्तु उसका बलिदान भारत के स्वतंत्रता के युद्ध में अमर हो गया।

"घायलों के शरीर से जो गोलियाँ निकाली गई थीं, उनकी जाँच करने से पता चला कि वे दमदम गोलियाँ थीं, जिनका व्यवहार अंतर्राष्ट्रीय विधान के मुताबिक युद्ध काल में भी मना है।"

इसी तरह के गौरव भरे कारनामों और बलिदानों से देश की स्वतन्त्रता का इतिहास रक्त रंजित मिलेगा। प्रश्न आज रह रहकर यह उपस्थित हो रहा है कि हम उन बलिदानियों के त्याग की रक्षा किस प्रकार कर रहे हैं।

आगे के दिनों में, जनवरी 1943 से लेकर 1946 तक घटनाएँ कुछ सुप्त रहीं, लेकिन यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि 1942 की क्रान्ति न हुई होती

तो संभव है कि आज भी हम गुलामी की बेड़ियों में बंधे होते।

प्रायः इस बात की आलोचना होती रही है कि गांधीजी ने आन्दोलन के लिए ठीक समय नहीं चुना और कुछ कार्यक्रम नहीं दिए। मेरा अपना निष्कर्ष है कि आन्दोलन के लिए यह सर्वथा उपयुक्त समय था, क्योंकि—

क) दुनिया भर के देश जब हिंसा में सराबोर थे, कोई इस खेमे में, तो कोई उस खेमे में, ऐसे समय में गांधीजी ने हिंसा के बीच अहिंसा का पाठ पढ़ाया।

ख) विश्व युद्ध में जो भी मित्र-राष्ट्रों के देश लड़ रहे थे, वे अपने देश की स्वतंत्रता के लिए। उसी भांति भारत ने भी अपनी लड़ाई स्वतंत्रता के लिए ही की।

ग) चाणक्य नीति के अनुसार दुश्मन जब कमजोर हो, तभी धावा बोलना चाहिए। अतः उसके लिए यह समय सर्वथा अनुकूल था।

घ) जनमानस इसके लिए बिल्कुल तैयार था।

ङ) नेताओं के बंदी बनाए जाने का रोष जनता को हुआ, अतः जनता ने बड़े पैमाने पर उसके मन में जो भी आया, उसे किया, कारण नेतृत्व करने वाला कोई भी व्यक्ति तो बाहर था ही नहीं।

च) गांधीजी का दृढ़ विश्वास था तथा आम लोगों की भी यही धारणा थी कि यदि अंग्रेज अपनी हार के समय कुछ नहीं दे सकते तो जब वे जीत जाएंगे, तब तो कुछ भी न देंगे।

छ) कम्युनिस्ट पार्टी को छोड़कर अन्य सभी व्यक्तियों और दलों में से इस बात पर एकता थी कि आन्दोलन जमकर हो तथा द्वितीय विश्व महायुद्ध में गुलाम भारत को घसीटना अन्याय है।

इस आन्दोलन की गरिमा का परिचय हमें इन शब्दों से प्राप्त हो सकता है—

"इस आन्दोलन का मंतव्य था कि प्रत्येक सरकार जनता से सत्ता प्राप्त करती है। जो सरकार अपने इस नैतिक आधार को खो देती है और केवल पशुबल

द्वारा जनता पर हुकूमत करती है, उस सरकार के प्रति विद्रोह करना जनता का एक स्वाभाविक हक है। ब्रिटिश सरकार ने अपनी कार्रवाइयों द्वारा जनता पर से अपना नैतिक प्रभाव खो दिया था। उसने बिना जनता की इच्छा के देश को लड़ाई में झोंक दिया था और वह अपने युद्ध प्रयास को सफल बनाने के लिए मनमाने तरीकों से काम ले रही थी। इस प्रकार उसने भारत पर जापानी आक्रमण को दावत दी थी। अतः आन्दोलन की भावना थी कि ऐसी सरकार के विरुद्ध बगावत करना और उसकी सत्ता पर अधिकार करना जनता का कर्तव्य है। 'खुली बगावत' का अर्थ है जनता का सरकार पर चौतरफा प्रहार करना, अपने को आजाद समझना तथा उसके किसी भी कानून को अपने पर बंधन न मानना।"

—'सन् बयालिस का विद्रोह' : श्री गोविन्द सहाय

एक ऐसा भी पर्चा मिला है, जिसमें आम जनता और कांग्रेस कार्यकर्ताओं से प्रान्तीय कांग्रेस समितियों द्वारा अपील की गई है कि 'भारत छोड़ो आन्दोलन' को सफल बनाने के लिए क्या-क्या करना है। यह अपील 8 अगस्त 1942 को बम्बई के कांग्रेस-महासमिति में पारित होने वाले प्रस्ताव के पहले ही जारी की गई थी, जिससे यह पता चलता है कि कांग्रेस के नेताओं को इस बात की जानकारी थी या अनुमान था कि बम्बई में प्रस्ताव पारित होते ही सभी नजरबंद हो जाएंगे।

पर्चे का शीर्षक है—आजादी की लडाइ को कैसे सफल करें !

1. महात्मा गांधी और अन्य नेताओं की गिरफ्तारी की खबर मिलते ही दिन भर हड़ताल रखी जाए। हड़ताल में व्यापारी, छात्र, वकील, मुख्तार, मजदूर, गाड़ीवान, रिक्शाचालक, सरकारी नौकरी करने वाले, जमींदार, किसान भाग लें। दिन-भर की हड़ताल के बाद संध्या में सभा की जाए। उसमें अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की बैठक में रखा जाने वाला कार्यकारिणी द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव पढकर सुनाया जाए

2. कार्यकर्ता गाव गाव मे जाए और महात्मा गांधी एवं अन्य नेताओं के आदेश ग्रामवासियों को सुनाए एवं उन्हें हर प्रकार के बलिदान करने को तैयार करें।

3 प्रत्येक नगर एव गाव मे सभाएं की जाए और जुलूस निकाले जाए। जुलूसो मे आजादी के नारे लगाए जाए और सभाओं मे लोगों को बताया जाए कि आजादी क्या है। यदि सरकार सभाओं और जुलूसो पर प्रतिबंध लगाती है तो उनका उल्लंघन किया जाए।

4. वकील और मुख्तार अपना काम करना छोड दें और कार्यक्रम की सफलता के लिए काम करें।

5 छात्र स्कूल-कालेज जाना छोड़कर आन्दोलन में कूद पड़ें। छात्रों से बहुत कुछ आशा है और यह आशा की जाती है कि वे उसे पूरी करेंगे।

6. पुलिस भाइयो से अपील है कि वे इस लड़ाई मे लगे हुए लोगो पर गोली नहीं चलाए या लाठी चलाकर उन्हें तितर बितर नहीं करें।

7. कार्यकर्ताओं को लाठियों या गोलियों से डरना नहीं होगा। इनका डटकर सामना करना होगा। वे पीछे नहीं हटें और कभी भी अहिंसा का मार्ग न छोड़ें एवं हिंसात्मक काम नहीं करें।

8. लोग चौकीदारी और यूनियन टैक्स देना बंद कर दें। चौकीदारों तथा दफादारों से अपनी नौकरी छोड़ कर आन्दोलन मे सम्मिलित होने का अनुरोध है।

9. पुलिस के जवान और जेल के वार्डरों से अनुरोध है कि वे सरकारी नौकरी छोड़ दें। सरकार उनसे ऐसा-ऐसा कुकर्म करायेगी जिससे देश का भारी हानि होगी। उन्हें कांग्रेसकर्मियो पर लाठी और गोली चलाने को बाध्य किया जाएगा। इस पाप से बचने के लिए उन्हें तुरत नौकरी छोड़ देनी चाहिए। यदि हमारे सभी पुलिस भाई अपनी नौकरी छोड देंगे तो उससे सरकार को भारी हानि होगी।

10. सरकारी नौकरी वालों से अनुरोध किया जाता है कि वे त्यागपत्र दे दें।

11 रेल कर्मियों, स्टीमर पर काम करने वालों और जमशेदपुर तथा ऐसे अन्य कारखानों के मजदूरों से अनुरोध किया जाता है कि वे अपनी नौकरी छोड़ दें।

12 कांग्रेस की पुकार पर जो त्यागपत्र देंगे उन्हें स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद पुनः काम पर फिर नियुक्त कर लिया जाएगा। जिन लोगों की जमीन आदि सरकार जब्त कर लेगी उन्हें स्वतन्त्रता के बाद लौटा दिया जाएगा।

13 गांवों में आन्दोलन में सहायता देने के लिए और जानमाल की रक्षा के लिए पंचायतें गठित की जाएं।

14 आजादी की लड़ाई से संबंधित सूचनाएं लोगों को बराबर मिलती रहें, इसका प्रबंध किया जाना चाहिए।

15 सरकारी भवनों पर राष्ट्रीय झंडे फहराए जाएं। सरकारी कर्मचारियों से आन्दोलन में सम्मिलित होने का आग्रह किया जाए। पुलिस से हथियार छीन कर उन्हें सुरक्षित स्थान पर रख दिया जाए। सरकारी कार्यालय बंद कर दिए जाएं और कर्मचारियों आदि को यह कहकर आश्वस्त किया जाए कि स्वतन्त्रता के बाद उन्हें फिर काम पर बुला लिया जाएगा।

16 छिपकर काम करने से सत्याग्रह आन्दोलन में कमजोरी आती है और उसके अच्छे परिणाम नहीं होते। इसलिए सभी कार्यक्रम पहले जनता के सम्मुख रख दिए जाएं और उसके बाद उनके अनुसार कार्रवाई शुरू की जाए।

ऊपर के इन सोलह सूत्री कार्यक्रमों की स्पष्टता के बाद निःसंदेह यह कहा जा सकता है कि 1942 के कार्यक्रम की विस्तृत योजनाएं बन चुकी थीं और जनता में इसके आधार पर तीव्रता भी आई। नेताओं के जेलों में चले जाने अथवा फरार हो जाने के बाद भी लगभग उपरोक्त कार्यक्रमों के अनुसार ही आन्दोलन की गतिविधि जारी रही।

देश के हर नेता को यह स्पष्ट मालूम था कि क्या करना है। जवाहरलालजी ने 'द डिस्कवरी आफ इंडिया' में गांधीजी के उस पत्र का हवाला दिया है जो

उन्होंने होरेस एलेक्जेन्डर तथा कुमारी अगाथा हेरिसन को लिखे थे-- "मेरी सुदृढ़ धारणा है कि अंग्रेजों को व्यवस्थित ढंग से अभी भारत से चला जाना चाहिए जिससे सिंगापुर, मलाया और बर्मा में उन्होंने जो किया उसे उन्हें दुहराना नहीं पड़े। उनका इस समय भारत से जाना उच्च कोटि के साहस का परिचायक होगा। वह मानव संवेदना की स्वीकृति होगी और भारत के प्रति सही नीति"।

सारी बातों और विवरणों पर गंभीरता से विचार करने के बाद निष्कर्ष यह निकलता है कि 1942 की क्रांति ने अंग्रेजों को यह एहसास दिला दिया कि अब उनका हिन्दुस्तान में टिके रहना संभव नहीं है। लार्ड लिनलिथगो के बाद लार्ड वैवल आए और उनके बाद लार्ड माउन्टबेटन ; और कहानी यहीं खत्म हो गई।

1942 की सार्थक चर्चा के क्रम में जवाहरलाल नेहरू, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस और जयप्रकाश के नामोल्लेख के बिना यह परिच्छेद अधूरा रह जाएगा, क्योंकि मुख्य रूप से यही तीन युवकों के आदर्श थे। सुभाष बाबू ने देश के बाहर से आजाद हिन्द फौज की स्थापना कर अंग्रेजों को भगाने का काम शुरू कर दिया था, जे. पी. हजारीबाग जेल की चारदीवारी लांघकर बाहर आ गए थे तथा संगठित रूप से उन्होंने क्रान्ति को आगे बढ़ाना शुरू कर दिया था तथा जवाहरलाल तो हर क्षण अपनी जवानी और जिन्दगी को हथेली पर लिए अलख जगाए चल रहे थे। अब वैसा नेतृत्व तथा उस नेतृत्व के प्रति जो श्रद्धा थी, उसका अभाव देखने में आता है।

हर नेता ने और इतिहासकार ने सन् 1942 की क्रान्ति का आकलन अपने-अपने ढंग से किया है, हम यहां मात्र जयप्रकाश नारायण के उस उद्धरण को इस संबंध में प्रस्तुत कर रहे हैं, जो उन्होंने 1946 में व्यक्त किए थे-- "सन् बयालीस की क्रांति इस देश के इतिहास में उस समय तक वही स्थान रखती है जो फ्रांस या रूस की क्रान्तियों का अपने-अपने देश में है। जिस पैमाने पर 1942 की क्रांति हुई थी वह इतिहास में अपना सानी नहीं रखती। इतने बड़े जन-समुदाय ने दूसरी किसी क्रांति में भाग नहीं लिया था। लेकिन केवल विस्तार और विशालता ही इस क्रांति की विशेषताएं न थीं। सन् 1942 ने देश की

काया-पलट कर दी, एक नये भारत का निर्माण किया। उसकी राजनीति को एक नई दिशा प्रदान की। स्वतंत्रता की लड़ाई ने पहले वैयक्तिक हिंसा का पथ ग्रहण किया, फिर असहयोग का। बयालीस में लड़ाई ने जनक्रांति का रूप लिया।असहयोग के अमोघ अस्त्र के लिए पर्याप्त नैतिक बल की कमी देखकर आजादी के सिपाही जब हतोत्साह हो रहे थे तो बयालीस ने अकस्मात उनके लिए नई राह प्रशस्त कर दी। अब तक हम जेलों को भरा करते थे अब देखा गया कि नेतृत्वहीन, शस्त्रहीन जनता ने विद्युत गति से जगह जगह पर विदेशी राज के अड्डों का नाश कर उन पर सहज ही अपना प्रभुत्व कायम कर लिया। अंग्रेजी राज का किला, जो अब तक इतना सुदृढ़ और दुर्भेद्य दीख रहा था, अकस्मात टूटने लगा। कहीं दीवार टूटी, तो कहीं कंगूरा, कहीं कुछ पाये तो कहीं मेहराब। जनता ने समझ लिया कि यह बालू की भीतों का बना हुआ किला है और उसने सीख लिया उन भीतों को ढाह देने का एक नया तरीका।''

—'सन् बयालीस का विद्रोह ' की भूमिका से

इसी भांति 21 अक्तूबर, 1942 को नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने आजाद हिन्द फौज के सुप्रीम कमांडर तथा आजाद सरकार के प्रधानमंत्री की हैसियत से अपने कतिपय मंत्रियों और अधिकारियों के दस्तखत के साथ एक बयान जारी किया था, जिसमें भगवान और अमर शहीदों के नाम पर भारतीय जनता से यह अपील की गई थी कि वह आजाद हिन्द सरकार के नेतृत्व के नीचे भारत की आजादी के लिए अपने आपको संगठित रूप से लगा दे। नेताजी सुभाष ने 1942 में ही एक नारा दिया था "चलो दिल्ली"!

अतएव अंग्रेजो भारत छोड़ो, करो या मरो तथा चलो दिल्ली और जय हिन्द ये सभी मिलकर एकाकार हो गये थे, जिसका सही फल प्राप्त हुआ देश को 15 अगस्त, 1947 को, जिस दिन देश आजाद हुआ और यूनियन जैक की जगह अपना तिरंगा फहराया गया।

तेजी से बढ़ते कदम

"हरेक आदमी अहिंसा को मानते हुए किसी भी हद तक जा सकता है। हड़तालों और दूसरे सब तरह के उपायों से हमें सरकार का कामकाज बिल्कुल बन्द कर देना है। सत्याग्रहियों को मरने के लिए तैयार होकर जाना चाहिए, जीने की इच्छा लेकर नहीं। इस तरह प्रत्येक आदमी मौत की खोज में अपनी जान हथेली पर लेकर निकल पड़ेगा, तभी राष्ट्र में जीवन का संचार होगा। प्रत्येक नर नारी को पूर्ण स्वाधीनता है कि अपना उद्देश्य पूरा करने के लिए हर तरह का उपाय काम में लावें।"

—महात्मा गांधी

स्वाधीनता निकट थी, परन्तु वर्तमान इतना [illegible] था कि भविष्य किसी को भी दिखाई नहीं देता था। भारत में इतिहास [illegible] लम्बे समय से स्थिर था कि कोई कल्पना नहीं कर सकता था कि वह कितनी तेजी से आगे बढ़ने वाला है। यह गतिहीनता भारतीयों को रुष्ट कर रही थी, [illegible] की भावना पैदा हो रही थी।

भारत में तैनात एक अमरीकी सेनापति ने कहा था "अंग्रेज लोग [illegible] भर पानी में तेल की एक बूंद के समान हैं।"

गांधी जी के बारे में बात करते हुए वाइसराय ने कहा "इस बारे में किसी भ्रम में मत रहो। यह बूढ़ा भारत में सबसे बड़ी चीज है... उसका बड़ा भारी प्रभाव है।"

"मैंने बम्बई में नेहरू का एक [illegible] में भाषण देते हुए सुना। 'मैं तलवार लेकर जापान से लड़ूंगा, परन्तु [illegible] ही मैं [illegible] सकता हूं।'

गांधी की कहानी—लुई फिशर

और ऐनी बेसेन्ट का नाम प्रमुख रूप से लिया जा सकता है, जो कालान्तर में कांग्रेस के अध्यक्ष भी हुए।

इससे जाहिर है कि प्रारंभ में कांग्रेस की स्थापना के पीछे कहीं न कहीं ऐसा प्रयास भी था कि ब्रिटिश सरकार का आशीर्वाद इसे प्राप्त हो तथा सुधारों के लिए उसकी अनुकम्पा थी। सरकार ने भी चार-पांच वर्षों तक इसे इसी रूप में लिया और प्रारंभिक वर्षों में जहां कहीं भी कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन हों, वहां वाइसराय अथवा गवर्नर द्वारा 'गार्डन पार्टी' की भी व्यवस्था कांग्रेस में भाग लेने आए प्रतिनिधियों के लिए होती थी। लेकिन ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये यह भी स्पष्ट होने लगा कि कांग्रेस का विकास ब्रिटिश मनसबदारों की आशाओं के अनुरूप नहीं होने जा रहा है और यह एक राजनीतिक तथा राष्ट्रीय संस्था के रूप में विकसित होती जा रही है। और अपनी स्थापना अथवा जन्म के दस वर्षों के अन्दर ही यह संस्था एक ओर जहां ब्रिटिश सरकार के कोप का भाजन हो गई,वहीं दूसरी ओर भारतीय जनता में अधिकाधिक लोकप्रिय होती चली गई।

उदाहरणार्थ कांग्रेस के पहले अधिवेशन में प्रतिनिधियों की संख्या जहां मात्र 71 थी, वह दूसरे अधिवेशन में 426 तथा पांचवें अधिवेशन में 1889 हो गई। समय बीतने के साथ ही कांग्रेस के उद्देश्यों और लक्ष्यों में भी क्रांतिकारी परिवर्तन होने लगे। 1885 में कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में नौ मांगें पेश की गई

1. एक शाही कमीशन के द्वारा, जिसमें भारत को भी प्रतिनिधित्व प्राप्त हो, भारतीय प्रशासन की जांच की जाए।
2. इंडिया कौंसिल (भारत परिषद) को तोड़ दिया जाए।
3. केन्द्रीय तथा प्रांतीय लैजिस्लेटिव कौंसिलों का विस्तार करके उनमें यथेष्ठ अनुपात में निर्वाचित सदस्यों को लिया जाए और उन्हें वार्षिक बजट पर बहस का अधिकार दिया जाए।
4. इंडियन सिविल सर्विस की परीक्षा इंग्लैंड और भारत में एक साथ ली जाए और उसमें प्रवेश करने वालों की अधिकतम उम्र 19 से बढ़ाकर 23 वर्ष कर दी जाए।

5. फौजी खर्च घटाया जाए।
6. चुंगी फिर से लगाई जाए और बढ़ा हुआ फौजी खर्च यदि घटाया न जा सके तो उसकी पूर्ति के लिए लाइसेंस कर का विस्तार किया जाए।
7. बर्मा को, जिस पर अधिकार करने की निन्दा की गई, अलग कर दिया जाए।
8. उक्त प्रस्तावों को सभी प्रान्तों की सभी राजनीतिक संस्थाओं को भेजा जाए, ताकि वे उनके क्रियान्वयन की मांग कर सकें।
9. अगले साल बड़े दिन पर कलकत्ता में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का अधिवेशन बुलाया जाए।

यानी प्रारंभिक दिनों मे कांग्रेस एक भीख मांगने वाली संस्था थी, लेकिन कुछ ही दिनों बाद जब बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय, अरविन्द घोष, विपिनचन्द्र पाल जैसे प्रखर लोगों का आगमन इसके मंचों पर हुआ तो इसकी शक्ल बदल गई। इन लोगों का कहना था कि सिर्फ प्रस्ताव पारित कर शासन में सुधार नहीं होंगे, उनके लिए ठोस कार्रवाई करने की आवश्यकता है। देश का हित मात्र स्वायत्तशासी संस्थाओं के विस्तार से संभव नहीं है, बल्कि हमारा नियंत्रण जब तक शासन पर नहीं होता है, तब तक हमारे उद्देश्य की पूर्ति नहीं होगी।

इन सारी बातों को लेकर कांग्रेस में नरम दल और गरम दल का आविर्भाव भी हो गया तथा उसकी परिणति 1907 के सूरत–कांग्रेस में हुई, जबकि आपसी भेद इतना बढ़ा कि जूते तक चल गये और बीच में ही कांग्रेस की कार्रवाई रोक देनी पड़ी।

इस सब के बावजूद यह मानना पड़ेगा कि कांग्रेस बुद्धिजीवियों की ही संस्था थी, जिसका काम तेजी के साथ जनता के बीच जागृति पैदा करने का ही रहा था, लेकिन आम जनता की संस्था के कार्यकलापों में न तो कोई दिलचस्पी थी, न दिलचस्पी और न ही उसे बहुत जानकारी।

इसके लिए यदि किसी एक आदमी को श्रेय है तो वह है महात्मा गांधी, जिनके हाथ में कांग्रेस की बागडोर आते ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, जन की,

प्रस्तावना हो, बौद्धिक विचार विमर्श हो, मिलन-जुलन का, बड़ी मुलाकातों की पार्टी न रहकर जनता की अपनी चीज हो गई। गांधी जी के दक्षिण अफ्रीका से भारत आने और 1915 1916 में उनके कांग्रेस के अधिवेशनों में भाग लेने से [illegible] गया, लेकिन कांग्रेस की वास्तविक बागडोर गांधीजी के हाथ में 1920 में नागपुर कांग्रेस में आई। जब कांग्रेस ने अपना ध्येय [illegible] शान्तिपूर्ण उपायों से पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति घोषित किया और अपने [illegible] आत्मक असहयोग की नीति [illegible] का निर्णय किया। इस प्रकार 1920 [illegible] और इसके रूप में भारी परिवर्तन आ गया।

निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उस दिन से कांग्रेस ही एक मात्र देश की आशा आकांक्षा, संघर्ष और चेतना की प्रतीक बन गई और गांधीजी एक मात्र इसके अगुआ हुए।

गांधीजी के आने के बाद से घटनाओं में तेजी आई। ब्रिटिश सरकार से सीधा संघर्ष शुरू हुआ। कांग्रेस को अब बहुत ही जन समर्थन भी प्राप्त होने लगा। 1921 में गांधीजी ने मुसलमानों द्वारा चलाए जा रहे खिलाफत आन्दोलन का समर्थन किया। इसके तुरन्त बाद ही असहयोग आन्दोलन भी शुरू कर दिया। प्रिंस ऑफ वेल्स के भारत आगमन पर उनका बायकाट किया गया तथा हिन्दू मुस्लिम एकता का भी इस मौके पर अपूर्व प्रदर्शन हुआ। 1929 में कांग्रेस ने अपने लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वराज्य प्राप्ति का लक्ष्य घोषित किया।

गांधी जी के नेतृत्व मे 1930 के अप्रैल में कांग्रेस ने असहयोग आन्दोलन की शुरूआत बड़े पैमाने पर की तथा आम-जनता और गांवों कस्बों के नौजवानों ने इसमें योगदान दिया। देश का कोई भी ऐसा प्रान्त नहीं था, जहां हजारों-हजार सत्याग्रही आगे न आये हों और वहां की जेलों को उन्होंने न भर दिया हो।

चम्पारण में शुरू किये गये सत्याग्रह आन्दोलन से लेकर 1931 के नागरिक अवज्ञा-आन्दोलन, बीच के खिलाफत आन्दोलन, साइमन वापिस जाओ,

दांडी यात्रा, नमक सत्याग्रह तथा गांधीजी की सत्य, अहिंसा और भाईचारे की नीति ने गांधीजी को जनता के करीब ला दिया था और उनके आह्वान पर जहां शहरी क्षेत्रों के बुद्धिजीवियों का बड़ा वर्ग आगे आया, वहीं ग्रामीण क्षेत्रों के अशिक्षित किसान मजदूर भी निर्भयता के साथ आगे आए। राष्ट्रीय आन्दोलन को गांधीजी की यह महान देन कही जा सकती है। उन्होंने कांग्रेस को एक महासंग्राम का रूप प्रदान किया। जिसके साम्राज्य में सूरज नहीं डूबता था, वह साम्राज्यशाही भी इस 'नंगे फकीर' से भय खाने लगी।

1930 से 1940 तक का समय भारत के लिए प्रयोग, परीक्षा, यातना, दमन, संघर्ष और महान त्याग का समय रहा है। इसमें गांधीजी के साथ ही अनेक ऐसे नौजवानों ने भी आगे बढ़कर अपने को होम किया, जिनका विश्वास अहिंसा में अथवा गांधीजी द्वारा सुझाई राह में नहीं था।

इसी बीच 1939 में द्वितीय विश्वयुद्ध की शुरुआत हुई, जिसमें भारतीय नेताओं में मत मतान्तर होने के बावजूद भी गांधीजी इस बात के लिए अन्ततोगत्वा सफल हुए कि इस युद्ध में भारत जैसे गरीब मुल्क का शोषण ठीक नहीं है तथा यही उपयुक्त मौका है जब आजादी की अन्तिम लड़ाई लड़ी जा सकती है।

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने इसी समय स्थल मार्ग से जर्मनी पहुंचकर और बाद में जापानियों से मदद लेकर आजाद हिन्द फौज की स्थापना की और शस्त्र तथा सैन्य बल पर अंग्रेजों से मोर्चा लेने की तैयारी शुरू कर दी।

देश के अनेक नेताओं का यह भी विचार था कि ब्रिटेन इस समय युद्ध में फंसा है, अतः उस पर अभी और दबाव देना ठीक नहीं होगा। बल्कि कुछ लोग तो ऐसे मौके पर ब्रिटिश सरकार के मददगार भी बने, जिनमें अनेक राजा-महाराजाओं से लेकर जमींदार तक अग्रणी थे और कम्युनिस्ट पार्टी ने तो खुलकर ब्रिटिश सरकार का इस मौके पर साथ दिया तथा गांधीजी और कांग्रेस की इस नीति की आलोचना की।

लेकिन कांग्रेस ने पहले वर्धा मे और बाद में बम्बई में अपनी कार्यकारिणी तथा महासमिति की बैठक बुलाकर सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव पारित कर दिया कि हमें अपनी आजादी मिल जानी चाहिए तथा अंग्रेजों का हमारी धरती पर रहना, युद्ध में भारत को घसीटना सरासर अन्याय है। गांधीजी ने देश को दो नारे दिये- 'अंग्रेजो भारत छोड़ो' और देशवासियों से कहा 'करो या मरो'।

और इसके बाद पूरा देश इस भारत छोड़ो आन्दोलन का चक्रव्यूह बन गया तथा देश के हर प्रबुद्ध नागरिक से लेकर गांव के किसान तक एक सशक्त सिपाही। जनता की जागृति, उत्साह, कुछ कर गुजरने का संकल्प तथा तन--मन-धन अर्पित कर देने की लालसा ब्रिटिश साम्राज्य को जड़ -मूल से हिला देने में सक्षम हुई और हम पहुंच गए आजादी की देहरी पर, जिसकी कहानी आगे के पृष्ठों में वर्णित की जा रही है।

द्वितीय विश्व युद्ध की आग में तपता भारत

"अगर हिन्दुस्तान अपने फर्ज को भूलता है, तो एशिया मर जाएगा। यह ठीक ही कहा गया है कि हिन्दुस्तान कई मिली-जुली सभ्यताओं या तहजीबों का घर है, जहां ये सब साथ-साथ पनपे हैं। हम सब ऐसे काम करें कि हिन्दुस्तान एशिया की या दुनिया के किसी भी हिस्से की कुचली और चूसी हुई जातियों की आशा बना रहे।

– गांधीजी : 'मेरे सपनों का भारत'

किसी देश का उत्थान और पतन युद्ध प. निर्भर करता है और युद्ध बराबर किसी भी आजाद देश की कल्पना हो सकती है, क्योंकि उसके ऊपर उसका उत्थान और पतन, विकास और ह्रास दोनों निर्भर करता है। द्वितीय विश्व युद्ध की विभीषिका जिस समय चारों ओर फैल गई थी, भारत परतंत्र और निर्धन देश था तथा इसे किसी से कुछ भी नहीं लेना-देना था। लेकिन ब्रिटिश सरकार जिसके अन्तर्गत हम गुलाम थे, वह उस युद्ध के एक नियामक हिस्सेदार थे तथा अमरिका और रूस के साथ उनकी साझेदारी चल रही थी, अतः न ऊधो का लेना और न माधो का देना होते हुए भी भारत घुन की तरह मित्र-राष्ट्रों के उस जौ में पिस गया।

विश्व युद्ध में हजारों भारतीय जो ब्रिटिश सरकार में सैनिक थे, खेत रहे। करोड़ों-अरबों का भारतीयों के ऊपर व्यर्थ का बोझ पड़ा। चीजों के दाम बेतरह बढ़ गए। मुनाफाखोरों, ठेकेदारों, व्यापारियों और अंग्रेजों के पिट्ठुओं का बोलबाला कायम हो गया और उनकी तिजारत चमक गई। विश्व युद्ध का असर और बंगाल का अकाल सामने है, जिसमें लाखों लोग तड़पकर पानी और अन्न

के अभाव में मर गए और हजारों युवतियों ने अपने शरीर को मामूली मूल्य पर बेचा। अर्थतंत्र इस संकट से जो चौपट हुआ है, वह अब तक नहीं संभल सका। 1939 में देश में 2,300 मिलियन रुपयों के नोटों का चलन था, जो 1945 में 12,100 हो गया।

ऐसे समय में देश में नई चेतना का उदय हुआ, जिसका श्रेय कांग्रेस और गांधीजी को है और वह यह है कि कांग्रेस ने प्रस्ताव पारित कर ब्रिटिश सरकार से यह मांग की कि वह तत्काल भारत छोड़ दे। प्रस्ताव यों तो 14 जुलाई, 1942 के दिन पारित हुआ, लेकिन उसके बहुत पहले ही गांधीजी तथा पं० नेहरू हर जगह इस बात को डंके की चोट पर कह रहे थे कि यदि अंग्रेज नहीं गए तो हमारा देश चौपट हो जाएगा।

दूसरी ओर अंग्रेजों की नीयत थी कि इस महायुद्ध में किसी न किसी प्रकार भारत को घसीटकर रखा जाए। इसके लिए देश की सबसे बड़ी प्रतिनिधि संस्था कांग्रेस की ओर गांधीजी की चिरौरी-विनती से लेकर भय दमन तक अंग्रेजों ने किया, लेकिन कांग्रेस अड़ी रही कि हम इसके हिस्सेदार नहीं हो सकते।

इस संबंध में गांधीजी ने जब अपनी मांग बार-बार दोहराई तो उनकी आवाज इंग्लैंड अमरीका हर जगह पहुंच गई तथा अमरीका के प्रेसीडेंट ने इसमें पहल भी की कि भारत को उसकी मांग के अनुसार कुछ रियायतें मिलनी चाहिए, लेकिन तत्कालीन ब्रिटिश प्रधानमंत्री चर्चिल टस से मस नहीं हुए और और दबाव की रक्षा के लिए उन्होंने सर स्टेफर्ड क्रिप्स को भारत भेजा, जिसका कुछ भी नतीजा नहीं निकला। ब्रिटिश सरकार सब कुछ के बावजूद एक बात के लिए अत्यधिक सावधान थी कि भारत को यदि किसी प्रकार की स्वतंत्रता दी भी जाए तो उसका स्वरूप औपनिवेशिक स्वतंत्रता से अधिक न हो, जिससे ब्रिटिश साम्राज्य का यूनियन जैक भारत से सदा के लिए नहीं उतरने पाए।

दूसरी ओर गांधीजी अडिग थे और उनका कहना साफ था कि अंग्रेजों को इस धरती पर एक मिनट भी रहने का हक नहीं है, अतः वे हमें अपने भाग्य पर छोड़कर फौरन जाएं—"मैं जानता हूं कि ऐसे नाजुक वक्त पर इस अद्भुत विचार

से बहुत से लोग स्तंभित हुए हैं। यदि मुझे अपने प्रति ईमानदार रहना था तो पागल करार दिए जाने का खतरा मोल लेकर भी मुझे सच्चाई की बात करनी थी। मैं इस युद्ध और भारत को विपत्ति से मुक्त करने में अपनी ठोस देन मानता हूं।'

1941 में ही यूरोप में युद्ध चरम सीमा पर पहुंच गया। एक ओर पोलैंड बेल्जियम, हालैंड, नार्वे, फ्रांस और पूर्व यूरोप के अधिकतर देशों को हराकर जर्मनी ने जून 1941 में रूस पर भी आक्रमण कर दिया तथा दूसरी ओर जापान ने फिलिपिन्स, हिन्दचीन, इंडोनेशिया, मलाया और बर्मा पर अपना कब्जा कर लिया तथा उसकी फौजें भारत की ओर भी तेजी से बढ़ीं। अन्डमान निकोबार द्वीपसमूहों पर कब्जा कर असम में वह प्रवेश कर गई तथा जापानी बमवर्षक जहाज कलकत्ता तथा अन्य नगरों पर मंडराने लगे और बमों का भी प्रयोग शुरू कर दिया। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की तरह से इस क्रम में ढील पैदा हो रही थी कि वे ही अपनी आजाद हिन्द फौज की मदद से इन क्षेत्रों से अंग्रेजों को भगाएंगे।

यह सब होने पर भी ब्रिटिश प्रधानमंत्री विंस्टन चर्चिल को भारत के लिए न तो कोई दर्द था और न ही इसके सर्वोच्च नेता महात्मा गांधी के प्रति कहीं भी कोई श्रद्धा-विश्वास। इस संबंध में लुई फिशर ने अपनी पुस्तक 'गांधी की कहानी' में ठीक ही लिखा है 'चर्चिल ने द्वितीय महायुद्ध ब्रिटेन की विरासत को कायम रखने के लिए लड़ा था। क्या वह एक अर्धनग्न फकीर को यह विरासत छीन लेने देता ? अगर चर्चिल का बस चलता तो गांधीजी वार्ता या मंत्रणा के लिए वाइसराय भवन की सीढ़ियों पर कदम नहीं रख पाते।'

घटनाएं तेजी से घट रही थीं। गांधीजी ने नागरिक अवज्ञा का व्यक्तिगत आन्दोलन अक्तूबर 1940 में शुरू करने की घोषणा की तथा प्रथम सत्याग्रही के रूप में आचार्य विनोबा भावे का नाम दिया। गांधीजी ने वाइसराय को लिखे एक पत्र में स्पष्ट किया कि "कांग्रेस नात्सीवाद की जीत की उतनी ही विरोधी है जितना कोई ब्रितानी नागरिक हो सकता है। लेकिन उसके उद्देश्यों को उस सीमा तक नहीं ले जाया जा सकता जब वे युद्ध में हिस्सा लेने लगें। आपने तथा भारतीय

मामलो के मत्री ने यह घोषित कर दिया है कि भारत अपनी इच्छा से युद्ध की तैयारी में मदद दे रहा है, अत यह स्पष्ट कर देना जरूरी हो जाता है कि इसमें भारतीय जनता के बहुत बड़े बहुमत की दिलचस्पी नहीं है। वे नात्सीवाद और भारत पर हुकूमत करने वाले दोहरे निरकुश शासन-तत्र में भेद नहीं करते।"

द्वितीय महायुद्ध जब अपनी चरम सीमा पर था और गाधीजी जब अतिम लडाई की मानसिक तेयारी कर रहे थे, तो उन्हीं दिनों सुप्रसिद्ध अमरीकी पत्रकार लुई फिशर भारत आए और वे एक सप्ताह तक जून 1942 में गाधीजी के साथ सेवाग्राम में रहे। उन्होंने बडी ईमानदारी से घटनाओं का विश्लेषण किया, जिसे हम उस युग के ऐतिहासिक ओर ईमानदार साक्ष्य के रूप में ले सकते है।

"जून 1942 का जो सप्ताह मैंने सेवाग्राम में बिताया, उसके प्रारम्भ में ही प्रकट हो गया था कि गाधीजी ने इग्लैड के विरुद्ध 'भारत छोडो' आन्दोलन छेडने का पक्का इरादा कर लिया है। इस आन्दोलन का यही नारा होने वाला था।

"एक दिन तीसरे पहर, जब गाधीजी उन कारणों पर विस्तार से प्रकाश डाल चुके, जो उन्हें ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध सविनय अवज्ञा-आन्दोलन शुरू करने के लिए उकसा रहे थे, तो मैंने कहा—"मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि अग्रेजों के लिए पूरी तौर से भारत छोडकर चले जाना सभव नहीं है। इसका अर्थ होगा जापान को भारत भेंट कर देना। इसके लिए इंग्लैड कभी राजी नहीं होगा और अमरीका भी इसे पसद नहीं करेगा। यदि आपकी माग यह है कि अग्रेज अपना बोरिया-बिस्तर समेटकर चले जाएं तो आप एक असंभव चीज माग रहे है। आपका यह अभिप्राय तो नहीं है कि वे अपनी सेना हटा लें?"

कम-से-कम दो मिनट तक गाधीजी मौन रहे। कमरे की निस्तब्धता मानो सुनाई दे रही थी।

"अत में गांधीजी बोले—"तुम ठीक कहते हो। हां, ब्रिटेन और अमरीका तथा अन्य देश भी यहा सेनाएं रख सकते हैं, तथा भारत की भूमि का फौजी कार्रवाइयों के लिए अड्डे की तरह उपयोग कर सकते हैं। मैं युद्ध में जापान की जीत नहीं चाहता। किन्तु मुझे विश्वास है कि जब तक भारतीय जनता आजाद न

हो जाए, तब तक इग्लैंड नहीं जीत सकता। जब तक ब्रिटेन भारत पर शासन करता रहेगा तब तक वह कमजोर रहेगा और अपना नैतिक बचाव नहीं कर सकेगा।"

"परन्तु यदि लोकतन्त्रीय देश भारत को अड्डा बना दे तो बहुत ही उलझने पैदा हो जाएंगी। सेनाए हवा में नहीं रहा करतीं। मसलन पश्चिमी मित्र राष्ट्रों को रेलों के अच्छे सगठन की अपेक्षा होगी।"

"हा, हा।"-गाधीजी ने उच्च स्वर से कहा "वे रेलों का सचालन कर सकते हैं। जिन बन्दरगाहों पर उनकी रसद उतरे वहा भी वे व्यवस्था कायम रखना चाहेंगे। वे नही चाहेंगे कि बम्बई और कलकत्ता में दगा-फसाद हो। इन मामलो में परस्पर सहयोग की और सम्मिलित प्रयास की आवश्यकता होगी।"

"क्या इस पारस्परिक सहयोग की शर्तें मित्रता के सधि पत्र में प्रस्तुत की जा सकती है ?"

"हा।" -गाधीजी ने सहमति प्रकट की "लिखित इकरारनामा हो सकता है।"

"आपने यह बात अभी तक कही क्यों नहीं ?" -मैंने पूछा।

गाधीजी ने कहा- "ब्रिटेन अपने को अन्धकार पाखड के चोगे में छिपाये रखता है। वह ऐसे वायदे करता है, जिन्हें बाद मे निभाता नहीं। परन्तु यह बात मैं मानता हूँ कि लोकतन्त्रीय राष्ट्र जीत जाए तो बेहतर मौका मिलेगा।"

"यह इस बात पर निर्भर है कि हम किस तरह की शाति रखते है !" मैंने कहा।

"यह इस पर निर्भर है कि आप युद्ध मे क्या करते हैं ? गाधीजी ने मेरी गलती सुधारी- "युद्ध के बाद स्वाधीनता में मेरी दिलचस्पी नही है। मैं अभी स्वाधीनता चाहता हूँ।"

लुई फिशर द्वारा वर्णित उपरोक्त बयानों से यह स्पष्ट होता है कि गाधीजी किस दिशा में सोच रहे थे।

हालांकि बाद के दिनों में इस चिन्तन के आधार पर गाधीजी ने जो तूफानी कार्यक्रम तैयार किया और देश का आह्वान किया, उसमें उन्हें कई प्रकार की

विपरीत परिस्थितियों का भी सामना करना पड़ा। कांग्रेस के अन्दर भी अनेक लोग ऐसे थे, जो युद्ध मे फंसे ब्रिटेन को इस समय दबाना अनुचित मानते थे। मुस्लिम लीग ने अपना प्रस्ताव अलग से रखा था तथा कांग्रेस से बिगडते सबधों को देखते हुए वे लाभ उठाना चाहते थे। अंग्रेजों के लिये साम्प्रदायिकता भडकाना और भडकना वरदान साबित हो रहा था। अतः मुसलमानों, सिखो , पारसियो सभी को अंग्रेज अपनी कूटनीति का हथियार बना रहे थे, लेकिन गांधी की जब आंधी चली तब तो सभी तत्व मुरझा गए।

लुई फिशर ने इस परिप्रेक्ष्य में गाधीजी का सही चित्रण इस रूप में किया है—"बूढे लोगों की पुरानी बातें याद आया करतीं हैं। लायड जार्ज सामयिक घटनाओ के बारे मे प्रश्न का उत्तर देना शुरू करते थे, लेकिन शीघ्र ही यह बताने लगते थे कि उन्होंने प्रथम महायुद्ध या सदी के प्रारम्भ में सामाजिक सुधार का आन्दोलन किस प्रकार चलाया। परन्तु तिहत्तर वर्ष की आयु में भी गाधीजी पुरानी बातें याद नहीं करते थे। उनका दिमाग तो आने वाली चीजों पर था। वर्ष उनके लिए कोई महत्त्व नहीं रखते थे, क्योंकि वह अनन्त भविष्य की बातें सोचते थे। उनके लिए कल (भविष्य) का महत्त्व था, क्योकि जो कुछ वह उस भविष्य को दे सकते थे, उसका वह माप था।"

1942 के 'भारत छोडो आन्दोलन' की पूर्व-पीठिका के लिए द्वितीय महायुद्ध की घटनाओं और ब्रिटिश मानसिकता का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यहां हमने सक्षेप में ही इसकी चर्चा की है, क्योंकि आगे उस पर विस्तार से चर्चा करने जा रहे हैं।

वैसे यह भी स्पष्ट ही है कि द्वितीय महायुद्ध में जीतकर भी ब्रिटेन आर्थिक मोर्चों पर हार गया था। उनकी स्थिति जर्जर हो गई थी। यही कारण था कि महायुद्ध में उसे विजयी बनाने वाले प्रधानमंत्री श्री चर्चिल जब उसके बाद चुनावों में गए तो वे भी हार गए तथा उनकी कंजरवेटिव पार्टी भी हार गई और बदले में वर्षों से सुप्त पड़े लेबर दल की सरकार बनी, जो भारत के लिए वरदान साबित हुई।

अगली फसल की जोरदार तैयारी

"मैं अपने जीवन में जिन निर्णयों पर पहुचा हूं, उन्हें मैंने इतिहास से नहीं पाया-मेरे विचार-चिन्तनों पर इतिहास का प्रभाव बहुत थोड़ा ही है। मेरी कार्यप्रणाली की नींव अभिज्ञता पर है अर्थात् मेरे सभी निर्णय अपनी व्यक्तिगत अभिज्ञता से प्राप्त हुए हैं। मै मानता हू कि इसमें गलती होने की संभावना है।"

—रोमां रोलां से गांधीजी की बातचीत का एक अंश

दिन गर्म तवे-सा जल रहा था।

रातों में भी गर्म हवा दिन के संदेश को कह जाती थी।

वह-जून का महीना था।

एक विदेशी नागरिक तांगे पर सवार वर्धा से सेवाग्राम की ओर चला जा रहा था।

हिचकोलों से अपरिचित शरीर कभी इधर झुक जाए, तो कभी उधर। लेकिन उसकी धुन थी और इसी कारण अमरीका से कई जगहों में होता हुआ, वह भारत पहुंचा और वह जानता था कि भारत का अर्थ ही है.....

तांगा सेवाग्राम पहुंच गया था। उसे पैसे दिए जा रहे थे। उतरने वाले यात्री ने देखा चारों ओर फूस की या टाट-जूट की या फिर मिट्टी की दीवारें, फूंस के या फिर खपड़ों के छाजन।

एक कुटिया के अन्दर गया, तो देखा कि आधे बदन को मुश्किल से ढाके गोरादीप्त चेहरा लिए एक बूढा जमीन पर बैठा है। जमीन पर शीतलपाटी बिछी है। और हर ओर से गर्मी की भयानक हठ-धर्मी झलक रही है।

वह बूढ़ा कोई और नहीं—हिन्दुस्तान की करोड़ों जनता की आशा-आकांक्षा और भविष्य के सपनों के प्रतीक राष्ट्रपिता महात्मा गांधी थे।

वह विदेशी कोई और नहीं, दुनिया के सुप्रसिद्ध पत्रकार लुई फिशर थे।

सेवाग्राम की कुटिया, कुटिया नहीं, राष्ट्रतीर्थ बन चुकी थी।

लुई फिशर अवाक् रह गये। दुनिया का सबसे बड़ा आदमी इस तरह ! लेकिन यही तो गांधी की विशेषता थी, जो उन्हें औरों से अलग करती थी। उन्होंने धरती से जो संबंध बनाया था, उसी का फल था कि धरती-पुत्रों का अगाध विश्वास लेकर वे चल रहे थे।

लुई फिशर गांधीजी के साथ सेवाग्राम की कुटिया में एक सप्ताह रहे और वहां से गांधीजी से बातें करके जो सूत्र ले आए, वह यह कि भारत में बहुत जल्द कोई बड़ा संग्राम छिड़ने वाला है— जन-संग्राम, जिसके संबंध में सोते-जागते, उठते-बैठते, बोलते-बतियाते गांधी कुछ ताना-बाना बुन रहे हैं।

जून के बाद जुलाई का महीना आया और उस के साथ ही आसमान में बादलों के कुछ टुकड़े इधर-उधर आते-जाते दिखाई दिए। किसानों ने समझ लिया बरसात करीब है और नई फसल की तैयारी शुरू हो गई। हलों के फल ठीक होने लगे, बैलों के सींगों में तेल की मालिश होने लगी, बीहन-खैहन-जोताई-बोवाई के परम्परागत कार्य आरम्भ हो गये।

हर साल ऐसा ही तो होता है, लेकिन इस साल कुछ जोरदार तैयारी थी। पता नहीं क्यों किसानों में कुछ विशेष उत्साह था। शायद इसलिए कि घाघ और भड्री ने. मौसम और पैदावार के बारे में जो उक्तियां कही हैं, उससे ऐसा लगता था कि इस साल फसल बहुत अच्छी होगी, इसीलिए जोरदार तैयारी भी किसानों ने शुरू कर दी थी।

दूसरी ओर बादलों के साथ-साथ आसमान में बमवर्षक विमानों का आवागमन भी शुरू हो गया था। कभी- कभी बादलों की उमड़-घुमड़ तथा बिजली की कड़क उन विमानों का भ्रम पैदा करती थी और कभी-कभी वे विमान बादलों का भ्रम पैदा करते थे।

द्वितीय विश्वयुद्ध की घोषणा के साथ-साथ अनजाने और अनचाहे रूप में भारत को भी उसमें घसीट दिया गया था। गाधीजी उसका परिणाम जानते थे, जर्जर भारत और भी खोखला हो जाएगा। जिन लोगों के बदन पर मात्र ढकने को ही कपडा है, वह भी छिन जाएगा। और जहा एक शाम खाकर किसी पकार जिन्दगी घिसट रही है, वहा दोनों जून के लाले पड जाएगे। विकृतिया बढेगीं। मूल्यों में बढ़ोतरी होगी। ब्रिटिश सरकार भारतीयों का खून चूसकर अपना सम्मान बढाएगी अथवा गौरव-वृद्धि करेगी। पराजित देश की लाशों के ढेर पर विजयी कहलाने का ब्रिटिश गुमान बढेगा।

ब्रिटिश प्रधानमत्री चर्चिल, भारत-मत्री एमरी, वाइसराय लिनलिथगो सभी के द्वार भारतीय नेताओं ने खटखटाए, लेकिन कुत्तों की तरह उन्हें दुत्कारा गया। गाधीजी व्यग्र हो उठे। उन्होंने सहारे के रूप में आमरण अनशन करने का इरादा किया, लेकिन महादेव देसाई के अनुरोध पर वे खून का घूंट पीकर रह गये। लेकिन 1940 में ही उन्होंने व्यक्तिगत सत्याग्रह की योजना बनाई--जिसके पहले सत्याग्रही हुए विनोबा और बाद में जेल गये प० नेहरू और पटेल।

लेकिन मामला इतना ही तो था नहीं। युद्ध की विभीषिका दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। उसी अनुपात में गरीब देश पर उसका व्यय-भार भी बढ़ता जा रहा था। गाधीजी विचलित हो उठे और उन्होंने इसके लिए एक विस्तृत योजना बना ली।

कैसी थी वह योजना और क्या था देश का अगला कदम? गांधीजी ने जवाहरलाल को सेवाग्राम बुलाया, वे एक सप्ताह रहे और दोनों गुरु-शिष्य में भारी विवाद हुआ। विश्व जहा हिसा के दावानल मे पडा हो, वहां नेहरू को गाधी की अहिसा अरण्यरोदन के समान लग रही थी। लेकिन गाधी दृढ़ थे कि भारत के सामने और कोई रास्ता है ही नहीं। अंत में हर बार की भांति जवाहरलाल ने गांधीजी की बात मान ली और तय हुआ कि 14 जुलाई को वर्धा में कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक बुलाकर सारी बातों पर विस्तार से विचार हो।

उधर मुस्लिम लीग अपने पाकिस्तान के सिद्धान्त पर अड़ी हुई थी। गाधीजी

का कहना था कि पाकिस्तान की नींव उनकी लाश पर ही पड़ेगी।

गांधी-टीम के चाणक्य श्री राजगोपालाचारी ने गांधीजी को कहा ही नहीं बल्कि कांग्रेस कार्यसमिति के सामने प्रस्ताव भी ला दिया कि पाकिस्तान दे दिया जाए और उसमें शरीक हुए सरदार वल्लभभाई पटेल। गांधीजी अवाक् न थे। खान अब्दुल गफ्फार खान ने साथ दिया गांधी का--नहीं दिया जाएगा पाकिस्तान। लेकिन अन्य सभी एक साथ थे। मौलाना आजाद कांग्रेस के अध्यक्ष थे, चुप रहना था चुप रहे। जवाहरलाल प्रखर और मुखर थे, कह गये- राजाजी का प्रस्ताव बेजा नहीं है। अंग्रेजों को किसी प्रकार की बहानेबाजी का मौका क्यों दिया जाए।

गांधीजी चाहते कि यह प्रस्ताव पारित न हो तो सवाल ही नहीं उठता था पारित होने का। स्वयं राजगोपालाचारी ही इसे वापस ले लेते। लेकिन नहीं, गांधीजी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता में इतना विश्वास करते थे कि अपनी मर्जी या सामर्थ्य को दांव पर लगाना बेमतलब मानते थे।

लेकिन ये सारी बातें छोटी-छोटी थीं, असल सवाल यह था कि विश्व में जब हिंसा की ताकत चारों ओर पाशविक नर्तन कर रही हो, तब गांधीजी अपनी अहिंसा को उसके सिर पर चढ़वाकर बुलवाना चाहते थे। और यही कारण था कि अपने मित्रों, सहयोगियों और कार्यसमिति के कई वरिष्ठ सदस्यों के ना-नू करने के बाद भी गांधीजी अडिग थे-इसी समय एक बड़ा प्रयोग करने के लिए।

1942 हर दृष्टि से राष्ट्रीय संग्राम का एक अप्रतिम वर्ष कहा जाएगा, क्योंकि एक से अनेक घटनाओं ने इस वर्ष इतिहास को नया मोड़ दिया। क्रिप्स-मिशन का आना और निराशा का ज्वार बिखेर कर चला जाना, भारत छोड़ो आन्दोलन की शुरुआत, 'करो या मरो' का नारा, दस हजार से अधिक लोगों का शहीद हो जाना, एक लाख से अधिक लोगों की गिरफ्तारी, कांग्रेस का अवैध संस्था घोषित कर दिया जाना, अनेक स्थानों से ब्रिटिश सरकार को खदेड़ दिया जाना आदि ऐसी बातें हैं, जो 1942 को एक सजीव वर्ष के रूप में हमारे इतिहास में प्रस्तुत करती हैं।

विदेशी पर्यटकों ने भारतीय जनजीवन की तस्वीर जब-तब बड़े करीने से रखी है। ह्वेनसांग, फाहियान, मेगस्थनीज आदि प्राचीन यात्रियों का उल्लेख आज भी हम भारतीय संदर्भ में जगह जगह करते हैं। भारत जब दावानल के इस दौर से गुजर रहा था, तो 1942 में एक अमरीकी यात्री, जो संवेदनशील मानव के साथ साथ दुनिया का जाना माना पत्रकार और लेखक भी था--लुई फिशर, वह हिन्दुस्तान आया उसने यहां की दशा का जो चित्रण अपने लेखों में किया है, उसे हम एक ईमानदार दस्तावेज मान सकते हैं।

हम यहां उस समय की वास्तविकता के बोध के लिए लुई फिशर की सुप्रसिद्ध पुस्तक 'गांधी की कहानी' से कुछ अंश प्रस्तुत कर रहे हैं --

"युद्ध संकट पर पुनर्विचार करने के लिए वर्धा में कांग्रेस-कार्यसमिति की बैठक हुई। 21 जून, 1940 को उसने स्पष्ट बयान दिया कि अहिंसा के मामले में वह गांधीजी के साथ पूरी तरह नहीं जा सकती।"

गांधीजी ने स्वीकार किया--"इस परिणाम पर मुझे खुशी भी है और विषाद भी। खुशी इसलिए कि मैं इस विच्छेद का आघात सह सका हूं और मुझे अकेला खड़े रहने की शक्ति मिली है। विषाद इसलिए कि इतने वर्षों तक जिन लोगों को साथ लेकर चलने का मुझे गौरव मिला था, उनका साथ लेकर चलने की सामर्थ्य अब मेरे शब्दों में नहीं प्रतीत होती है।"

वाइसराय ने 29 जून को फिर गांधीजी को मुलाकात के लिए बुलाया। लार्ड लिनलिथगो गांधीजी के अमिट प्रभाव को पहचानते थे। उन्होंने सूचना दी कि इग्लैंड भारतवासियों को भारत के शासन में अधिक विस्तृत हिस्सा देने को तैयार है।

जुलाई के प्रारंभ में कार्य-समिति की बैठक इस प्रस्ताव को तौलने के लिए हुई। गांधीजी इसे बेकार समझते थे। उन्हें राजगोपालाचारी के विलक्षण विरोध का सामना करना पड़ा। राजगोपालाचारी ने वल्लभभाई पटेल को अपनी राय का बना लिया था। केवल फ्रंटियर गांधी गफ्फार खां गांधीजी का साथ दे रहे थे। राजाजी का प्रस्ताव भारी बहुमत से पास हो गया।

युद्ध के बीच विशुद्ध शान्तिवाद की दूरदर्शिता को गांधीजी कांग्रेस के गले न उतार पाए।

विंस्टन चर्चिल इंग्लैंड के प्रधानमंत्री थे और देश को बहादुरी के साथ मुकाबले के लिए उत्प्रेरित कर रहे थे। पिछले वर्षों में उन्होंने भारत की स्वाधीनता के विरुद्ध अनेक वक्तव्य दिए थे। अब उनके हाथ में उसे रोकने की सामथ्र्य थी। तद्नुसार 8 अगस्त को लिनलिथगो ने बयान दिया कि वह कुछ भारतवासियों को अपनी कार्यकारिणी कौंसिल में शामिल होने का निमंत्रण देंगे और एक युद्ध सलाहकार कौंसिल स्थापित करेंगे, जिसकी बैठकें नियमित रूप से हुआ करेंगी। लिनलिथगो ने यह भी कहा कि ब्रिटिश सरकार अपनी मौजूदा जिम्मेदारियां ऐसी किसी भी भारतीय सरकार को सौंपने का विचार नहीं कर सकती, जिसकेअधिकार को आबादी के बड़े तथा बलशाली तत्व मानने को तैयार नहीं है। इसका अर्थ यह था कि ब्रिटिश सरकार मुसलमानों की मर्जी के बिना कांग्रेस को भारत का शासन नहीं करने देगी।

कांग्रेस कार्य-समिति बुरी तरह क्रोधित हुई और उसने ब्रिटिश सरकार पर दोष लगाया कि उसने सहयोग के मित्रता पूर्ण तथा देश-भक्तिपूर्ण प्रस्ताव को ठुकरा दिया और अल्पसंख्यकों के प्रश्न को भारत की प्रगति के मार्ग में दुर्गम रुकावट बना दिया।

"चर्चिल की कृपा से कांग्रेस फिर गांधीजी के पास लौट आई।"

(गांधी की कहानी : लुई फिशर)

पहले ही कह चुका हूं कि समय-समय पर विदेशी पर्यटकों ने हिन्दुस्तान के इतिहास, सभ्यता, संस्कृति, रहन-सहन और शिक्षा-सद्भाव पर विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है। जिन दिनों लुई फिशर भारत-भ्रमण कर रहे थे, वह विश्व की तनातनी का तथा भारत के संघर्ष का काल था। लुई फिशर इस बात को भली-भांति जानते थे कि भारत की राजनीति का अर्थ ही है भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की गतिविधि और कांग्रेस का साधारण-सा अर्थ ही था— गांधी। अतः उन्होंने

भारत को करीब से जानने, उसकी समस्याओं का अवलोकन करने तथा जो व्यक्ति घटनाओं की धुरी की कील के समान था, उसे समझने के लिए भयानक गर्मी के दिनों में भी सेवाग्राम में एक सप्ताह का समय बिताया और प्रतिदिन इस बीच उन्होंने गांधीजी से एक घंटे बातचीत करके विश्व को जो लेखा-जोखा दिया वह एक ईमानदार बुद्धिजीवी के साथ-साथ भारत के प्रति सहानुभूति रखने वाले मित्र के उद्‌गार कहे जाएंगे

जिस तटस्थता के साथ उन्होंने साफ-साफ शब्दों में अपनी बातें लिखी हैं, वह उस समय की चेतना को समझने में पूर्णतया सहायक है।

1942 का हर महीना और विशेष तौर से अगस्त माह का एक-एक दिन राष्ट्रीय स्वतंत्रता-संग्राम का लेखा-जोखा है। जून के बाद जुलाई का महीना आया और बूंदाबांदी शुरू हो गई।

भारत गांवों का देश और उसकी आत्मा किसान ! अतः गांवों में हलचल शुरू हो गई खेती की और किसान-मजदूर अपने-अपने कामों पर वैसे ही जुट गये, जैसे कोई सिपाही युद्ध-क्षेत्र में जुटता है।

उधर किसानों ने खेती में बीज बोये, इधर गांधी ने देश में आत्मचेतना जगाई।

उधर बीजों ने अंकुरित होकर अपनी आंखें खोलीं, इधर गांधी ने अपना भावी कार्यक्रम निर्धारित कर लिया।

उधर किसानों ने खेतों की सिंचाई-निराई शुरू की, इधर गांधी ने नये आह्वान की भूमिका बांधी।

उधर पौधे बड़े हुए, इधर घटनाओं में तेजी आई।

सावन की फुहारों में किसान अपना भविष्य देख रहे थे और 14 जुलाई, 1942 को वर्धा में आयोजित कांग्रेस कार्य-समिति की बैठक में गांधीजी अपने प्रस्ताव को तौल रहे थे।

सावन-भादो यही दो महीने हैं घनघोर बरसात के और गांधीजी ने इसी महीने को चुना आन्दोलन के सूत्रपात के लिए। शंकाएं उठीं— बरसात में लोग--

बाग खेती--गृहस्थी में फंसे रहते हैं। उत्तर मिला-- राष्ट्र की आजादी से बड़ी खेती और कुछ नहीं हो सकती।

और उसके बाद किसानों ने देखा कि फसल लहलहाने को हो रही है, गांधीजी ने देखा कि एक दिन का समय भी व्यर्थ में गंवाने का नहीं है। 14 जुलाई की कार्यसमिति ने फैसला लिया कि मात्र 21 दिन की सूचना जो कांग्रेस-विधान के अनुसार आवश्यक थी, पर कांग्रेस महासमिति की बैठक 7 अगस्त को बम्बई में बुलाई जाए।

नदियों का ज्वार अब समुद्र किनारे पहुंच गया। छोटी-लहरों को महासमुद्र के ज्वारभाटों ने लील लिया। महासमिति में भारतीय नौजवानों के चहेते जवाहरलाल नेहरू ने प्रस्ताव रख दिया-- 'अंग्रेजो भारत छोड़ो' और भारतीय किसानों के प्रतीक-पुरुष वल्लभभाई पटेल ने इसकी ताकीद कर दी। फिर क्या था-- हजारों हाथ एकसाथ उठ गये-- बस इसी की आवश्यकता थी।

फसलों में किसान खाद डाल रहे थे, बिना उसके पुष्ट दाने कैसे आते। गांधीजी चुप थे अबतक, रात आधी हो गई थी, कांग्रेस-अध्यक्ष मौलाना आजाद ने अदब के साथ एलान कर दिया कि अब बापू हमें मार्गदर्शन देंगे। गांधीजी ने उस आधी रात में भी लगभग ढाई घंटे का भाषण दिया, पहले हिन्दी में और बाद में अंग्रेजी में, शब्दों ने एक आकृति ग्रहण की, पूरा भाषण क्रांति की ताबीज बन गया, एक ही वाक्य मंत्र के समान कन्याकुमारी से लेकर कश्मीर तक फैल गया--करेंगे या मरेंगे।

करने वालों से अधिक संख्या मरने वालों की हो गई। करने वाले सबके सब जेल के सींकचों में, मरने वाले सेक्रेटेरियट, थाना, स्टेशन कचहरी पोस्टआफिस के आगे-पीछे, बायें-दायें। रिकार्ड रखना मुश्किल हो गया कि यूनियन जैक को फाड़-जलाकर कितने तिरंगे उनकी जगह फहराये गए और उसी समान आंकड़ों में कैद करना भी कठिन हो गया कि कितने लोग कहां मारे गये, घायल हुए, नजरबन्द किये गये, फरार रहे तथा कितने सदा के लिये इधर-उधर घूमते हुए हमसे सदा के लिये बिछड़ गये।

निश्चित निर्धारित कार्यक्रम के अभाव में तथा नेतृत्व की अनुपस्थिति में जनता ने, नौजवानों ने, किसानो ने तथा बुद्धिजीवियों ने इतना ही माना कि करना है मरना है, तो फिर चलो आगे बढो, बोलो--भारत माता की जय !

दुनिया में और भी क्रान्तियां हुई हैं तथा दुनिया में आजादी की लड़ाई अन्य मुल्कों ने और भी संजीदगी के साथ लड़ी है, जिसमें लाखों-लाख लोग परवान चढ़ते रहे हैं। लेकिन ऐसी लड़ाई दुनिया के किसी मुल्क में शायद ही लड़ी गई हो कि कुचले जा रहे है, हंटरों से पीटे जा रहे हैं, बर्फ की सिल पर लिटाये जा रहे है, नाखून में कील ठोकी जा रही है, गोलियों के शिकार हो रहे हैं, लाठियों से चूर-चूर किये जा रहे हैं और हाथ तक नहीं उठा रहे है।

सही माने में विश्व के लिये यह एक नई देन और आश्चर्य चकित कर देने वाला प्रयोग--हिंसा का मुकाबला अहिंसा से, असत्य का मुकाबला सत्य से, दमन का मुकाबला निर्भयता से, शत्रुता का मुकाबला मैत्री से तथा अंगारों का मुकाबला फूलों से किया जा रहा था।

गांधी एक चुनौती थे, जिसका सामना बर्बर ब्रिटिश-सरकार कर तो रही थी, लेकिन यह जानते-समझते हुए कि नंगे फकीर के आगे वह बेबस लाचार हैं। घटनाए उस एक आदमी के इर्द-गिर्द ही घूम रही थीं। अतः किसी भी रचनाकार के लिये यह असंभव-सा है कि गांधी को अलग करके घटनाओं का ब्यौरा प्रस्तुत करे।

सच्चाई यह कही जा सकती है कि राष्ट्रीय आन्दोलन का संचालन-सूत्र कांग्रेस के हाथ में था और कांग्रेस गांधी की मुट्ठी में थी। इस तथ्य को अनेक बार अनेक रूपों में कहा गया है। सुभाषचन्द बोस ने जब कांग्रेस के अध्यक्षपद से त्यागपत्र दिया था, तब उन्होंने भी यही बात कही थी, जवाहरलाल जी हों या जयप्रकाश-लोहिया, अन्त में उन्हें भी इसी तथ्य के साये में आना पड़ता था। जवाहरलाल जी 1936-37 में कांग्रेस के अध्यक्ष थे, लेकिन उन्होंने स्वयं स्वीकार किया था कि गांधी जी कांग्रेस के 'स्थायी महाध्यक्ष' हैं।

अंग्रेज बार-बार इस बात को जाहिर करते थे कि गांधी कुछ नहीं है, उनकी एक प्रजा मात्र, लेकिन गांधी का जादू उनके सिर पर चढ़कर बोलता था। सुप्रसिद्ध गांधीवादी-लेखक और हिन्दी-सेवी श्री मोहनलाल भट्ट ने अपनी पुस्तक 'आत्म-साधना' में एक रोचक वर्णन दिया है—"गांधी-इरविन संधि के समय सर विन्सेंट चर्चिल दिल्ली की वाइसराय भवन की सीढ़ियों पर चढ़ते हुए नंगे फकीर गांधीजी को देखकर बौखला उठे थे, परन्तु आगे चलकर गांधीजी को इंग्लैंड में सम्राट् के राजभवन, बकिंगघम पैलेस की सीढ़ियां चढ़ते हुए चर्चिल को देखना पड़ा। गोलमेज परिषद के सदस्यों से सम्राट की मुलाकात हुई, उस समय वे गांधीजी से भी मिले। वे घुटनों तक की अपनी धोती पहने थे और शरीर पर चादर ओढ़े हुए थे। उन्होंने अपने पहनावे में परिवर्तन नहीं किया क्योंकि वे भारत के दरिद्रनारायण के प्रतिनिधि थे। ब्रिटिश सरकार ने उन्हें इसी पोशाक में सम्राट से मिलने दिया। यह अभूतपूर्व बात थी और गांधी जी तथा भारत की प्रतिष्ठा की सूचक थी।"

वही गांधी 'भारत छोड़ो आन्दोलन' के सूत्रधार थे। बिना सही नेतृत्व के कोई भी जन-आन्दोलन नहीं चल सकता और आम जनता उस नेतृत्व को व्यक्तित्व, कर्तृत्व, वक्तृत्व के तराजू पर तोलती है और उसे जब यह विश्वास हो जाता है कि यह आदमी हमारे भले की बात कर रहा है तब वह सब कुछ अर्पण करने को तैयार हो जाती है। गांधी और भारतीय जनता का सम्बन्ध भी इसी कसौटी पर बना।

किसानों ने देखा कि हम जिस बाने में अपने खेतों को जोत रहे हैं, उसी बाने में गांधी जी भी आन्दोलन का संचालन कर रहे हैं। फिर लोगों का सहज विश्वास जगा कि यह जो खेती हम कर रहे हैं वह मात्र एक साल के लिये है, पता नहीं अगले साल क्या हो, लेकिन गांधीजी जिस खेती कीतैयारी कर रहे हैं, खाद और पानी और बीज दे रहे हैं, वह खेती स्थायी है। फिर वैचारिक रूप में गांवों के किसानों-मजदूरों ने इस आन्दोलन को अपना लिया, नतीजा यह हुआ कि 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन में ग्रामीणों का जितना योगदान रहा है, उतना उसके पहले कभी नहीं रहा था।

उत्तर प्रदेश और बिहार में किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन में किसानों तथा खेतिहर मजदूरों का कुल आन्दोलनकारियों में 40 प्र० भाग था। ये आंकड़े ग्रामीण जागृति को द्योतित करते हैं तथा बतलाते हैं कि पूरा भारत जाग गया था। भारत की आबादी में 80 प्र० से अधिक भाग किसानों और खेतिहर मजदूरों का रहा है, अतः बिना उनके सहयोग के कोई भी आन्दोलन जन-आन्दोलन नहीं कहला सकता है। गांधीजी इस बात को भली-भांति जानते थे। यही कारण था कि उन्होंने न केवल अपने आपको भारतीय दरिद्र नारायण का प्रतीक बनाया था, वरन् सेवाग्राम की उनकी कुटिया भी भारत के सात लाख गांवों में ही एक थीं, जहां बिजली, फोन, सड़क आदि की कोई सुविधा नहीं थी।

और नतीजन नयी फसल की तैयारी तथा 'भारत छोड़ो' आन्दोलन की जागृति साथ-साथ हो रही थी।

किसानों के मन में आशा का संचार हो रहा था, इस बार अच्छी फसल काटेंगे, गांधीजी के मन में विश्वास जाग रहा था; इस बार तो कुछ होकर रहेगा।

हल और बैल यही दो किसान के हथियार थे, सत्य और अहिंसा यही दो गांधी के अस्त्र थे।

बारिश जमके शुरू हुई, आन्दोलन जमकर प्रारम्भ हुआ।

उधर जहां-तहां फसलों में कीड़े भी लगे, जिसे किसानों ने दवा-दारू देकर मारा-भगाया, इधर आन्दोलन में भी मुखबिर घुसे, जिन्हें जनता ने पहचानकर बेनकाब किया।।

इस तरह भारत में अगली फसल की तैयारी जोरदार ढंग से चली और फसल में पुष्ट दाने आये और ऐसा विश्वास होने लगा कि इस बार पिछले सालों की अपेक्षा कुछ अधिक उपलब्धि होगी।

अंग्रेजो, भारत छोड़ो !

"मनुष्य-जीवन में जिस प्रकार शैशव, यौवन, प्रौढ़ावस्था और वार्द्धक्य आते हैं, राष्ट्रीय जीवन में भी उसी प्रकार से ये अवस्थाएं देखने में मिलती हैं। मनुष्य मरता है और मृत्यु के बाद नया कलेवर धारण करता है। राष्ट्र भी मरता है और मरण के भीतर से ही नवजीवन प्राप्त करता है। फिर भी व्यक्ति और राष्ट्र में अन्तर यह है कि सब राष्ट्र मृत्यु के बाद जीवन नहीं पाते। जिस राष्ट्र के अस्तित्व की कोई सार्थकता नहीं रह जाती, जिस राष्ट्र की हृदय-गति बिल्कुल स्तब्ध हो जाती है, वही पृथ्वी-तल से विलुप्त हो जाता है अथवा कीट-पतंग की भांति जीवन धारण करता रहता है और इतिहास के पृष्ठों के बाहर उसके अस्तित्व का कोई निदर्शन नहीं रह जाता।

"भारतीय राष्ट्र एक से अधिक बार मरा है, किन्तु मृत्यु के बाद पुनर्जीवित भी हुआ है। उसका कारण यह है कि भारत के अस्तित्व की सार्थकता थी और अब भी है।"

('तरुणाई के सपने' : सुभाषचन्द्र बोस)

अंग्रेजो, भारत छोड़ो !

यह वाक्य या नारा न होकर एक संकल्प बन गया।

किसी ने इस वाक्य को कहा, साथ-साथ कई ध्वनियां और अर्थ सामने आ गये—अरे भाई, अब तो जान छोड़ो, जाओ, भागो।

—अंग्रेजो, जितना तुमसे बना तुमने लूटा, हम मौन होकर भगवान का नाम लेकर यातनाएं सहते रहे, भइया, अब सीधे विदा लो, नहीं तो बुरा वक्त आने वाला है।

—अंग्रेजों, समझ लो, अब एक मिनट के लिये भी तुम हमारी धरती पर नहीं रह सकते। सात समुद्र पार से आए हो, वहीं जाओ। हमारी पावन धरती को रौंदकर तुमने लहू-लुहान किया, हम सहते रहे, इसका अर्थ क्या यह समझा जा सकता है कि हममें ताकत नहीं है। अरे जान बचाकर भागो, नहीं तो एक-एक कर हम तुम्हें चुनकर रख देंगे।

- समेटो अपना बोरिया-बिस्तर और राह नापो। डेढ़-दो सौ साल तक चूसते रहे, क्या अब भी संतोष नहीं है। आए थे व्यापारी बनकर और बन गये सम्राट। अरे, हम ही थे, जिन्होंने यह सहा और तुमने हमारे अन्दर फूट डालकर हमारे ही भाइयों की मदद से हमें छलनी-छलनी किया। अब हम एक मिनट भी बर्दाश्त नहीं करेंगे।

—अब क्या देखना और क्या पूछना !गांधी बाबा ने कह दिया, जवाहरलाल तो पहले से ही कह रहे थे, मौलाना आजाद, राजेन्द्र बाबू, सरदार वल्लभभाई पटेल और देश के दूसरे नेता तो गाधीजी के अनशन, सत्याग्रह से ही परेशान रहते हैं, नहीं तो ये लोग तो कभी के हुंकार दे देते। लेकिन इस बार तो बात ही उलट गई है, राजाजी जैसे लोग सोच-विचार कर रहे हैं, इधर- उधर की बातें कर रहे हैं कि तभी गांधीजी ने ऐलान कर दिया- अंग्रेजो, भारत छोड़ो। अब हम एक मिनट भी विदेशी ताकत को अपने सीने पर सहन करने के लिये तैयार नहीं हैं।

- फूंक दो सालों को जो भी सामने आए। कचहरी में आग लगा दो, थाने को ढाह दो, पोस्टआफिस को उखाड़ फेंको, रेलवे लाइन की अब कोई जरूरत नहीं रही, टेलीफोन का तार हमें मुंह चिढ़ाने के लिये क्यों रहेगा और इन अंग्रेजों के पिट्ठुओं को तो देखो, कोई बच के न निकलने पाए।

—सब नेता तो जेलों में हैं और हमारे सामने तो कांग्रेस का प्रस्ताव है कि अंग्रेजों को इस धरती से भगाना है। फिर किससे क्या पूछना, कहना। चलो अब जय या क्षय ही हो जाए।

- देख लेना, अब ये ज्यादा दिन के मेहमान नहीं हैं। इसी बार तो इन लाल बन्दरों को सबक सिखाने का मौका आया है।

– आधे से अधिक भारत में अपना राज स्थापित हो गया है। शेष में भी हो ही जाएगा। देखते नहीं हो इन्हें गुमान था कि इनके साम्राज्य में सूरज नहीं डूबता है और इस बार जापानियों तथा जर्मनों ने इनका भुर्ता निकाल दिया।

—कुछ सुना तुमने ? अंग्रेजों ने गांधीजी को आगाखां पैलेस में कैद करके रखा है, लेकिन महान आश्चर्य कि वे आज शाम बम्बई में चौपाटी पर देखे गये।

अरे वह कोई आदमी नहीं, देवता हैं, देवता। यह सब तो वह खेल दिखा रहे हैं, जैसे भगवान राम ने दिखाया था और कृष्ण ने। वरना जैसे सुदर्शन चक्र से भगवान कृष्ण ने कितनों का संहार कर दिया, वैसे ही गांधी बाबा आज चाहें तो सभी अंग्रेजों का सिर धड़ से अलग हो जाए। लेकिन नहीं, यह सब लीला है कि जो भी होगा मानव के समान।

—कम जुल्म नहीं किया है इन पिल्लों ने। जलियांवाला बाग, सरदार पटेल, भगत सिंह, राजगुरू, अशफाकउल्ला, खुदीराम बोस को फांसी, चन्द्रशेखर आजाद के शरीर को छलनी-छलनी कर देना, मोतीलाल नेहरू, लाला लाजपत राय, पं० गोविन्दवल्लभ पन्त जैसे बुजुर्ग लोगों पर लाठियों की बौछार, लाखों लोगों को जेलों में ठूंस देना, कालापानी भेज देना, गोली से उड़ा देना और बात ही बात में आदमियों के ऊपर घोड़े दौड़ा देना, हंटर से मार-मारकर पेट-पीठ को लहूलुहान कर देना, बेड़ियों में जकड़ देना, कुत्तों से मेम साहबों द्वारा नुचवा देना, ब्लडी-फूल के नीचे की बात ही नहीं करना—इन सारी बातों का फैसला इस बार हो जाएगा।

—सुभाष बाबू भी असम पारकर कलकत्ता की ओर बढ़े चले आ रहे हैं और दो-चार दिनों में वे कलकत्ता पहुंच जाएंगे। आजाद हिन्द फौज ने चारों ओर से घेरा डाल दिया है। बच्चू, अब भाग कर कैसे निकलोगे।

ये और इनके समान ही अन्य बातें भी घर-घर, गली-गली, नुक्कड़, अलाव, खेत-खलिहान, स्कूल-कालेज, होटल-रेस्तरां, बस-दफ्तर में रात-दिन होनी शुरू हो गईं। जितने मुंह, उतनी बातें। लोगों को इन चर्चाओं में आनन्द आता था। न कहीं कोई अखबार उनकी खबर देते थे और न कोई दूसरा सूत्र था, फिर भी

कानोकान एक जगह की बात बेतार के तार के समान यहा से वहां पहुंच जाती थी।

जयप्रकाश, रामनन्दन मिश्र, योगेन्द्र शुक्ल, सूरज प्रसाद सिंह, शालिग्राम सिंह आदि ने हजारीबाग जेल को फांद कर अपने को मुक्त कर लिया-- तो नौजवानों का हौसला और बढ़ा--वाह, जयप्रकाश !

बंगाल, महाराष्ट्र और बिहार के अनेक हिस्सों में राष्ट्रीय सरकारों की स्थापना हो गई, जिसने जनता का हौसला और भी बुलन्द किया। बलिया, मुजफ्फरपुर, मुंगेर, सतारा, तालचर, तामलुक आदि स्थानों में अंग्रेज़ों ने और उनके पिट्ठुओं ने या तो अपने को जनता के सामने समर्पित कर दिया अथवा भाग खड़े हुए और कई जगहों पर उग्र भीड़ ने हिंसा का सहारा लिया, जिसमें अनेक अंग्रेज़ और हिन्दुस्तानी अफसर, सिपाही मारे गये।

अधिकांश नेता जेलों में थे, अतः जिसके जी में जो भी आया, उसे करना उसने अपना कर्त्तव्य माना। सारे देश में एक ही दृश्य था--जनता का उग्र--प्रदर्शन, पुलिस की हिंसा, गिरफ्तारी और दमन--चक्र। ब्रिटिश सरकार थर्रा गई, पहली बार राष्ट्र ने महसूस किया कि हम भी कुछ कर सकते हैं, देश में नौजवानों ने अपनी जान हथेली पर रख दी--कुछ करना है, तो डरना क्या ? आत्मचेतनाका विकास हुआ तथा अंग्रेज़ों को लगने लगा कि हमाराअब इस धरती पर टिकना संभव नहीं है।

हालांकि मुल्क ने इसके लिये 1857 के बाद सबसे अधिक बलिदान दिया। दस हजार से अधिक लोग मारे गयें तथा एक लाख से अधिक लोग जेलों में बंद किये गये। दिल्ली जैसी जगह में 11 और 12 अगस्त को 47 बार निहत्थे लोगों पर गोलियां चलीं, जिसमें 67 लोग घटनास्थल पर ही मारे गये। तामुलक, मिदनापुर, मुंगेर आदि जगहों में जब पुलिस नाम की चिड़िया का भी पता नहीं चला तो हवाई जहाज से गोले बरसाये गये तथा मशीनगनों का प्रयोग किया गया।

दूसरी ओर जनता ने भी अपनी ताकत का परिचय सैकड़ों गोरों और उनके काले पिट्ठुओं को भूनकर दिया तथा उस दौरान 208 पुलिस स्टेशन, 332 रेलवे

स्टेशन और 945 पोस्ट आफिसों को क्रुद्ध भीड़ ने जला दिया या उखाड़ दिया।

उस समय भारत के वाइसराय लार्ड लिनलिथगो थे। उन्होंने ब्रिटिश प्रधानमंत्री चर्चिल का सहारा पाकर दमन-चक्र को और बढ़ाया तथा बातचीत अथवा किसी तरह की सुलह-संधि की नीति को ताक पर रख दिया। नेताओं की अनुपस्थिति में अलग-अलग गुटों अथवा व्यक्तियों ने अपनी-अपनी लगन-बुद्धि के अनुसार आक्रोश भरी चुनौती के रूप में कार्यवाइयां कीं, जो जनाक्रोश का रूप लेता गया और यही जन-आक्रोश आगे चलकर आन्दोलन के रूप में और आन्दोलन विद्रोह के रूप में बदलता गया। इसमें सबसे अधिक अगुआई देश के नौजवानों और छात्रों ने की, लेकिन देश के किसानों-मजदूरों ने भी इसमें जमकर साथ दिया और सही अर्थों में यह जन-आन्दोलन हो गया। गांधीजी चाहते भी यही थे। महीनों-महीने स्कूल-कालेज तथा कल-कारखाने बंद रहे तथा हफ्तों तक कई स्थानों में जनता ने अपनी वैकल्पिक सरकारें बनाकर ब्रिटिश शासन को अस्तित्व ही समाप्त कर दिया।

सब होते हुए भी 1942 का यह आन्दोलन नेतृत्व के अभावतथा संगठित कार्यक्रम न रहने के कारण सफल न हो सका, क्योंकि उसका दूरगामी प्रभाव यह हुआ कि साम्राज्यवाद के विरुद्ध भारतीय जनाक्रोश तथा स्वतन्त्र होने का अपना दृढ़ संकल्प स्पष्ट झलक गया।

वाइसराय ने गांधीजी को पत्र लिखकर इस हिंसात्मक आन्दोलन के लिये उन्हें तथा कांग्रेस को जिम्मेवार बताया, लेकिन गांधीजी ने उतनी ही सख्ती और दृढ़ता सेइसे नकारते हुए ब्रिटिश सरकार पर दमन बढ़ाने का दोषारोपण किया। इस स्थिति का सही चित्रण अमरिकी पत्रकार लुई फिशर ने अपनी एक पुस्तक में करते हुए लिखा है-"जिस क्षण गांधीजी जेल के दरवाजों में बंद हुए थे, उसी क्षण हिंसा की धाराओं के फाटक खुल गये।"

गांधीजी का मिजाज भी लड़ाकू हो रहा था। रंगमंच पर छा जाने की अदम्य क्षमता से, काराबद्ध महात्मा गांधी का व्यक्तित्व आगाखां के सुनसान महल की दीवारों को तोड़कर बाहर निकल गया और उसने पहले तो ब्रिटिश सरकार के

दिमाग को और फिर भारतीय जनता के दिमाग को घेर लिया।

14 अगस्त को गांधीजी ने वाइसराय को जेल से अपना पहला पत्र भेज जिसमें उन्होंने सरकार पर, तोड़–मरोड़ और गलतबयानी का आरोप लगाया। लिनलिथगो ने उत्तर दिया कि "आपकी आलोचना से सहमत होना मेरे लिये संभव नहीं है और न नीति में परिवर्तन करना ही संभव है।"

गांधीजी ने कई महीने प्रतीक्षा की। 1942 की अन्तिम तारीख को उन्होंने लिखा–"प्रिय लार्ड लिनलिथगो,

यह बिल्कुल व्यक्तिगत पत्र है। मेरा ख्याल था कि हम आपस में मित्र हैं। मगर 9 अगस्त के बाद की घटनाओं से मुझे शंका हो गई है कि अब भी आप मुझे मित्र समझते हैं या नहीं। कड़ी कार्यवाही करने से पहले आपने मुझे बुलाया क्यों नहीं, अपने संदेह मुझे बतलाए क्यों नहीं और यह क्यों नहीं निश्चय किया कि आपको मिले तथ्य सही भी हैं या नहीं?"

मैंने उपवास के द्वारा शरीर को सूली पर चढ़ाने का निश्चय किया है। मुझे मेरी गलती या गल्तियों का यकीन दिला दो तो मैं सुधार करने के लिये तैयार हूं।.....अगर आप चाहें तो बहुत से रास्ते निकल सकते हैं।

मैं हूं,
आपका सच्चा दोस्त
मो० क० गांधी

वाइसराय को यह पत्र चौदह दिन बाद मिला। अग्निकाण्डों और हत्याकाण्ड का जिक्र करते हुए लिनलिथगो ने अपने उत्तर में लिखा–"मुझे गहरा दुःख है कि आपने इस हिंसा और अपराध की निन्दा के लिये एक शब्द भी नहीं लिखा है।"

इसके उत्तर में गांधीजी ने कहा–" 9 अगस्त के बाद की घटनाओं के लिये मुझे खेद अवश्य है, किन्तु क्या इसके लिये मैंने भारत सरकार को दोषी नहीं ठहराया है? इसके अलावा जिन घटनाओं पर मेरा न तो प्रभाव है, न काबू तथा जिनके बारे में मुझे केवल एकतरफा बयान मिला है, उन पर मैं कोई मत प्रकट

नहीं कर सकता। मुझे विश्वास है कि यदि आप हाथ नहीं उठाते और मुझे मुलाकात का मौका देते तो अच्छा ही परिणाम निकलता।"

लिनलिथगो ने इस पत्र का तत्काल उत्तर दिया और लिखा—"मेरे पास इसके सिवा और कोई विकल्प नहीं है कि हिंसा तथा लूटमार के खेदजनक आन्दोलन के लिये कांग्रेस को तथा उसके अधिकृत प्रवक्ता आपको जिम्मेदार मानूं। उचित है कि आप 8 अगस्त के प्रस्ताव तथा उसमें व्यक्त की गई नीति का परित्याग करें और भविष्य के लिये मुझे समुचित आश्वासन दें।"

इसके प्रत्युत्तर में गांधीजी ने कहा—"सरकार ने ही जनता को भड़काकर पागलपन की सीमा तक पहुंचा दिया है। मैंने जीवन भर अहिंसा के लिये प्रयत्न किया है, फिर भी आप मुझ पर हिंसा का अपराध लगाते हैं। इसलिये जब मेरे दर्द को मरहम नहीं मिल सकती तो मैं सत्याग्रही के नियम का पालन करूंगा। अर्थात् शक्ति के अनुसार उपवास करूंगा। यह 9 फरवरी को शुरू होगा और इक्कीस दिन बाद समाप्त होगा।.....मेरी इच्छा आमरण उपवास की नहीं है, परन्तु यदि ईश्वर की इच्छा हो तो मैं कठिन परीक्षा को सही-सलामत पार करना चाहता हूं। यदि सरकार अपेक्षित कदम उठावे तो उपवास जल्दी समाप्त हो सकता है।"

वाइसराय ने 5 फरवरी को तुरंत एक लम्बा पत्र भेजा, जिसमें दंगों-फसादों के लिए फिर कांग्रेस को ही जिम्मेदार बताया। पत्र के अन्त में कहा गया था—"आपकी तंदरुस्ती और आयु के ख्याल से, उपवास के आपके निश्चय पर मुझे बहुत खेद है। आशा है कि आप उपवास का विचार छोड़ देंगे।... मैं तो राजनीतिक उद्देश्यों केलिये उपवास के प्रयोग को एक प्रकार की राजनैतिक धौंस मानता हूं, जिसका कोई भी नैतिक औचित्य नहीं है।"

गांधीजी ने लौटती डाक से इसका उत्तर भेज दिया। उन्होंने लिखा—"यद्यपि आपने मेरे उपवास को इस प्रकार की राजनैतिक धौंस बतलाया है, तथापि मेरे लिये तो यह उस न्याय के वास्ते सर्वोच्च अदालत में अपील है, जिसे मैं आपसे प्राप्त नहीं कर सका।"

इसके बाद की घटनाओं को यहां देने की आवश्यकता नहीं समझता।

गांधीजी और वाइसराय के पत्र-व्यवहार का औचित्य इस माने में है कि उस समय की परिस्थिति पर इससे काफी प्रकाश पड़ता है।

जनता के आक्रोश को गांधीजी ने गलत नहीं ठहराया, नहीं तो जो गांधी चौरीचौरा की एक घटना से द्रवित और दुखी होकर सविनय अवज्ञा आन्दोलन को वापस ले सकते थे, वह इस परिस्थिति में भी कुछ कर देते, लेकिन नहीं, ऐसा उन्होंने इसलिये नहीं किया क्योंकि उन्होंने इसकी जवाबदेही सही माने में सरकार को दी।

अब हम चाहेंगे कि 'अंग्रेजो भारत छोड़ो', जिसे इतिहास 'भारत छोड़ो आन्दोलन' के रूप में जानता है, उस पर ही अब सीधी चर्चा हो।

क्रिप्स-मिशन के खाली हाथ वापस लौट जाने से भारत में एक गहरी निराशा हुई। गांधीजी ने जब क्रिप्स महोदय से बातें कीं और पाया कि इनके पास देने के लिये कुछ भी ठोस प्रस्ताव या आधार नहीं है तो साफ शब्दों में उन्होंने कहा कि--"जब आपके पास इतनी ही बात है तो अच्छा हो कि जो सबसे पहला प्लेन आपको मिले, उससे लंदन वापस चले जाएं।"

जनता को भी गांधीजी ने बतला दिया कि स्टेफर्ड क्रिप्स जो प्रस्ताव लेकर आए थे वह 'पोस्ट डेटेड चैक' था। क्रिप्स का प्रस्ताव था कि युद्ध समाप्त होने के बाद यथाशीघ्र भारतीय संघ की स्थापना कर दी जाएगी, जिसका स्तर ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के राज्य की तरह होगा। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने उसे इस आधार पर अस्वीकार कर दिया कि उसमें भारत को 'औपनिवेशिक स्वराज्य' तत्काल देने की बात नहीं कही गई थी।

14 जुलाई, 1942 को कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक वर्धा में बुलाई गई, जिसमें एक प्रस्ताव पारित कर ब्रिटेन की सरकार से यह मांग की गई कि वह फौरन सत्ता भारतीयों को सौंपकर 'भारत छोड़ दें'। प्रस्ताव में यह भी कहा गया कि 'कांग्रेस अपनी इच्छा के विरुद्ध मजबूर होकर सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन छेड़ेगी, जो अनिवार्य रूप से महात्मा गांधी के नेतृत्व में होगा।

प्रस्ताव पर अन्तिम निर्णय लेने के लिये कांग्रेस महासमिति की बैठक

7 अगस्त, 1942 को बम्बई में बुलाई गई जिसमें देश के कोने-कोने से लगभग बीस हजार सदस्य, प्रतिनिधि और कार्यकर्ता भाग लेने आए। इसी बैठक में 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पं० जवाहरलाल नेहरू ने पेश किया, जिसका समर्थन सरदार वल्लभभाई पटेल ने किया और अध्यक्षता कर रहे थे कांग्रेस के तत्कालीन अध्यक्ष मौलाना अबुल कलाम आजाद।

वर्धा में जब इस प्रस्ताव पर चर्चा हो रही थी तो अनेक सदस्यों के मन में दुविधा थी कि यह शायद उचित अवसर नहीं है, जिस पर गांधीजी ने अपना स्पष्ट एलान किया कि यदि यह स्वीकार नहीं किया गया तो वह कांग्रेस छोड़ देंगे और भारत की बालू से एक ऐसा आन्दोलन पैदा करेंगे जो खुद कांग्रेस से भी बड़ा होगा।

बम्बई महाधिवेशन की उपस्थिति और लोगों में उत्साह का उमड़ता ज्वार ही इस प्रस्ताव के समर्थन का द्योतक था। गांधीजी ने स्पष्ट शब्दों में यहां चेतावनी दी--"या तो वे खुद ही भारत का शासन भारतीयों के हाथ में सौंपकर यहां से चले जाएं, नहीं तो उन्हें सम्पूर्ण भारतीय राष्ट्र की उमड़ती हुई शक्ति का दृढ़ सामना करना पड़ेगा।"

अब तक गांधी शान्ति के मसीहा माने जाते थे, उनका यह दृढ़ स्वर क्रान्ति का धधकता हुआ शोला साबित हुआ तथा हर प्रतिनिधि ने यह शपथ ली कि या तो हम स्वाधीनता प्राप्त करेंगे या मर मिटेंगे।

जब बातें विस्तार से हो रही हैं तो हमारे लिये यह आवश्यक है कि आमूल रूप से हम उस प्रस्ताव को देखें, जिसे 'भारत छोड़ो' का दस्तावेज माना जाता है और जिसमें अंग्रेजों को पहली बार इतनी सशक्तता के साथ सीधे तौर पर भारत छोड़ने के लिये कहा गया था। अतः यहां हम सम्पूर्ण प्रस्ताव दे रहे हैं--

"अखिल भारतीय कांग्रेस समिति ने कांग्रेस कार्यसमिति के 14 जुलाई, 1942 के प्रस्ताव के उस हवाले पर, जो कार्यसमिति द्वारा पेश किया गया है और उसके पश्चात् होने वाली घटनाओं पर जिनमें युद्ध की विभीषका, ब्रिटिश सरकार के जिम्मेदार अधिकारियों के भाषण और हिन्दुस्ताम तथा विदेशों में की

गई टीका टिप्पणियां भी है, उन्हीं भावनाओं से विचार किया है। अ० भा० कां० क० उस प्रस्ताव को मंजूर करते हुए उसका समर्थन करती है और उसकी राय है कि बाद की घटनाओं के द्वारा इसे और भी मुनासिब बना दिया है। [illegible] बात को साफ कर दिया है कि हिन्दुस्तान में विदेशी हुकूमत का, हिन्दुस्तान और मित्र [illegible] के आदर्श पूर्ति के लिये फौरन खत्म हो जाना बहुत जरूरी है। [illegible] परतन्त्र हिन्दुस्तान की इज्जत घटाता है और उसे कमजोर बनाता है और अपना बचाव करने तथा दुनिया की आजादी के आदर्श की पूर्ति में सहयोग देने की ताकत में क्रमश कमी पैदा करता है।

"इस कमेटी ने रूस और चीन के मोर्चे पर स्थिति बिगडते निराशापूर्वक देखा है और रूसियों और चीनियों की उस बहादुरी की बडी प्रशंसा करती है, जो उन्होंने अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा में दिखाई है। जो लोग स्वतन्त्रता के लिये कोशिश भी कर रहे हैं और हमले के शिकार बने लोगों से हमदर्दी रखते हैं, उन सबों को मजबूरन बढता हुआ खतरा उस नीति की परीक्षा करने के लिये मजबूर करता है, जिसका सहारा साथी राष्ट्रों ने अब तक ले रखा है और जिसके कारण बार बार भयानक नाकामयाबिया हुई है। ऐसे ध्येयों, नीतियों और ढगों पर कायम रहने से असफलता, सफलता मे नहीं बदली जा सकती, क्योंकि पिछले तजुर्बे से यह जाहिर हो चुका है कि असफलता इन नीतियों में छिपी हुई है। ये नीतियां आजादी पर उतनी आधारित नहीं की गई है जितनी कि अधीन और औपनिवेशिक देशों पर प्रभुत्व कायम रखने और साम्राज्य को अधिकार में रखना, शासनाधिकार की ताकत बढ़ाने के बदले एक बोझ और अभिशाप बन गया है, क्योंकि भारत की आजादी से ही ब्रिटेन और साथी राष्ट्रों की परीक्षा होगी और एशिया और अफ्रीका की जातियों में आशा और हिम्मत भर जाएगी।

"इस तरह इस देश में अंग्रेजी हुकूमत खत्म होने की बहुत अधिक और फौरन जरूरत है। आजाद हिन्दुस्तान अपने समूचे बड़े साधनों को आजादी के हक में और नाजीवाद, फासिस्टवाद और साम्राज्यवाद के खिलाफ लगाकर इस कामयाबी को पक्का कर देगा। इससे सिर्फ लड़ाई की स्थिति पर ही काफी असर

नहीं पड़ेगा, बल्कि सारा पराधीन और दुखी मानव समाज भी साथी राष्ट्रों के पक्ष में हो जाएगा और हिन्दुस्तान जिन राष्ट्रों का दोस्त होगा उनके हाथों में ससार का नैतिक और आध्यात्मिक नेतृत्व भी आ जाएगा। बन्धनों में जकड़ा हुआ हिन्दुस्तान, ब्रिटिश साम्राज्यवाद का मूर्तिमान स्वरूप बना रहेगा और इस साम्राज्यवाद का कलंक सारे साथी राष्ट्रों की तकदीर को दूषित करता रहेगा।

"इसलिये इस समय के सभी खतरों को देखते हुए हिन्दुस्तान को आजाद कर देने और ब्रिटिश प्रभुत्व को समाप्त कर देने की जरूरत है। भविष्य के लिये किसी भी तरह की प्रतिज्ञा और गारंटी से मौजूदा परिस्थिति में सुधार नहीं हो सकता और न ही उसका मुकाबला किया जा सकता है। इससे जन-समूह के दिमाग पर वह मनोवैज्ञानिक असर नहीं पड़ सकता, जिसकी इस समय जरूरत है। सिर्फ आजादी की रोशनी से ही करोड़ों लोगों का वह बल और उत्साह प्राप्त किया जा सकता है, जो फौरन ही युद्ध के स्वरूप को बदल देगा।

"इसलिये यह कमेटी पूरे आग्रह के साथ हिन्दुस्तान से अंग्रेजी सत्ता हटा लेने की मांग को दुहराती है। हिन्दुस्तान की आजादी की घोषणा हो जाने पर एक अन्तरिम सरकार कायम कर दी जाएगी और आजाद हिन्दुस्तान साथी-राष्ट्रों का दोस्त बन जाएगा तथा आजादी की लड़ाई की मिली-जुली कोशिश की परीक्षाओं और दुख-सुख में हाथ बटाएगा। अन्तरिम सरकार देश के मुख्य दलों और श्रेणियों के सहयोग से ही बनाई जा सकती है। इस तरह यह एक मिली-जुली सरकार होगी, जिसमें हिन्दुस्तानियों के सभी महत्वपूर्ण वर्गों का प्रतिनिधित्व होगा। उसका पहला फर्ज अपनी सशस्त्र और अहिंसात्मक ताकतों के द्वारा साथी-राष्ट्रों के साथ मिलकर भारत का बचाव करना, हमले का विरोध करना तथा खेतों, कारखानों तथा दूसरी जगहों में काम करने वाले उन श्रमजीवियों की भलाई और उन्नति करना होगा, जो निश्चय ही सभी ताकतों और अधिकारों के सच्चे पात्र हैं। अन्तरिम सरकार एक विधान-निर्मातृ-परिषद की योजना बनाएगी और परिषद भारत सरकार के लिये एक ऐसा विधान तैयार करेगी, जो जनता के सभी वर्गों को मजूर होगा। कांग्रेस की राय में यह विधान संघीय होना चाहिए,

जिसके अन्तर्गत संघ में शामिल होने वाले सूबों को हुकूमत के ज्यादा-से-ज्यादा अधिकार प्राप्त होंगे, बचे हुए अधिकार भी इन प्रान्तों को मिलेंगे। हिन्दुस्तान और मित्र-राष्ट्रों के सम्बन्ध उन सभी आजाद देश के प्रतिनिधियों द्वारा निश्चित कर दिये जाएंगे, जो अपने पारस्परिक लाभ और हमले का मुकाबला करने में सामान्य कार्य में सहयोग देने के लिये आपस में बातचीत करेंगे। आजादी, हिन्दुस्तान को अपनी जनता की सम्मिलित इच्छा और ताकत के बल पर हमले का कारगर ढंग से विरोध करने में समर्थ बना देगी।

"हिन्दुस्तान की आजादी विदेशी प्रभुत्व से अन्य एशियाई राष्ट्रों के छुटकारे का प्रतीक और श्रीगणेश होगी। बर्मा, मलाया, हिन्दचीन, डच द्वीप समूह ईरान और इराक को भी पूरी आजादी मिलनी चाहिए। यह साफ तौर पर समझ लेना चाहिए कि इस समय जो देश जापान के नियंत्रण में हैं, उन्हें बाद में किसी औपनिवेशिक सत्ता के अधीन नहीं रखा जाएगा।

"इस खतरे के समय में यद्यपि अ० भा० का० स० को मुख्यतः हिन्दुस्तान की आजादी और बचाव से नाता रखना चाहिए, तो भी कमेटी की राय है कि संसार की भावी शान्ति, सुरक्षा और सुव्यवस्थित उन्नति के लिये स्वतन्त्र राष्ट्रों का एक विश्व-संघ बनाने की जरूरत है और किसी बात को आधार बना कर आधुनिक दुनिया की समस्याओं को नहीं सुलझाया जा सकता। इस तरह के विश्व-संघ में उसमें सम्मिलित होने वाले राष्ट्रों की स्वतन्त्रता, एक राष्ट्र द्वारा दूसरे पर हमले और शोषण को रोकना, राष्ट्रीय अल्पसंख्यकों का संरक्षण, पिछड़े हुए सभी क्षेत्रों और लोगों की उन्नति और सब के सामान्य हित के लिये संसार के साधनों का एकत्रीकरण किया जाना निश्चित हो जाएगा। इस तरह का विश्व-संघ स्थापित हो जाने पर सभी देशों में निःशस्त्रीकरण हो सकेगा। राष्ट्रीय सेनाओं, नौ-सेनाओं तथा वायु सेनाओं की कोई जरूरत नहीं रहेगी और विश्व-संघ-रक्षक सेना संसार में शान्ति रखेगी और हमले को रोकेगी।

"आजाद हिन्दुस्तान ऐसे विश्व-संघ में खुशी से शामिल होगा और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाने में अन्य देशों के साथ बराबरी के आधार पर सहयोग करेगा।

"इस संघ का द्वार उसके आधारभूत सिद्धान्तों का पालन करने वाले समस्त राष्ट्रों के लिये खुला रहना चाहिए। लड़ाई के कारण यह संघ शुरू में सिर्फ साथी राष्ट्रों तक ही सीमित रहेगा। यदि यह काम अभी शुरू कर दिया जायगा तो लड़ाई पर, धुरी राष्ट्रों की जनता पर और आगामी शान्ति पर इसका बड़ा जोरदार असर पड़ेगा।

"पर यह कमेटी अफसोस के साथ अनुभव करती है कि लड़ाई से दुखद और बेचैन कर देने वाले सबक सीखने के बाद और दुनिया पर खतरे के बादल घिर आने पर भी कुछ ही देशों की सरकार विश्व संघ बनाने की ओर कदम उठाने को तैयार है। ब्रिटिश सरकार की प्रतिक्रिया और विदेशी पत्रों की भ्रमपूर्ण टीका-टिप्पणियों से यह स्पष्ट हो गया है कि हिन्दुस्तान की आजादी की साफ माँग का भी विरोध किया जा रहा है, यद्यपि यह वर्तमान खतरे का सामना करने और आत्मरक्षा के अतिरिक्त जरूरत के मौके पर चीन और रूस की सहायता करने के लिये की गई है। चीन और रूस की आजादी बहुत कीमती है और उसकी हिफाजत होनी चाहिए, इसलिये यह कमेटी इस बात के लिये बहुत उत्सुक है कि उसमें किसी तरह की बाधा न पड़े और साथी राष्ट्रों की रक्षा शक्ति में कोई बाधा न पड़ने पाये। पर हिन्दुस्तान और इन राष्ट्रों के लिये संकट रोज बढ़ता ही जा रहा है और खुद आत्मरक्षा करने और हमले का विरोध करने की उसकी ताकत घटती जा रही है। इस हालत में न तो रोज बढ़ते जाने वाले खतरे की बढ़ाई रोक-थाम की जा सकती है, और न साथी राष्ट्रों की जनता की कोई सेवा ही की जा सकती है। कार्य समिति ने ब्रिटेन और साथी राष्ट्रों से जो हार्दिक अपील की थी, उसका अभी तक कोई जवाब नहीं मिला है। बहुत से विदेशी हलकों में की गई टीका टिप्पणियों से जाहिर हो गया है कि हिन्दुस्तान और संसार की आवश्यकताओं के विषय में अज्ञान फैला हुआ है। कभी कभी तो प्रभुत्व कायम रखने की भावना और जातिगत ऊँच-नीच का द्योतक वह विरोध भी दिखाया गया है, जिसे अपनी शक्ति और अपने ध्येय के औचित्य का ज्ञान रखने वाली कोई भी स्वाभिमानी जाति सहन नहीं कर सकती।

"कमेटी इस अन्तिम क्षण में विश्व स्वातन्त्र्य का ध्यान रखते हुए फिर ब्रिटेन और मित्र राष्ट्रों से अपील करना चाहती है, पर वह इस बात का भी अनुभव करती है कि उसे अब राष्ट्र को एक ऐसी साम्राज्यवादी और शासनप्रिय सरकार के विरुद्ध अपनी इच्छा प्रमाणित करने से रोकने का कोई अधिकार नहीं है जो उस पर अधिकार जमाए हुए है और जो उसे अपनी और मानव-जाति की भलाई के ख्याल से काम करने से रोकती है। इसलिये कमेटी भारत की स्वाधीनता और स्वतन्त्रता के अविच्छेद्य अधिकार का समर्थन करने के उद्देश्य से अहिंसात्मक ढंग से और अधिकाधिक विस्तृत पैमाने पर एक विशाल आन्दोलन चालू करने की मंजूरी देने का निश्चय करती है, जिससे देश गत बाइस वर्षों से शान्तिपूर्ण संग्राम के लिये संचित की गई सारी अहिंसात्मक शक्ति का प्रयोग कर सके। यह संग्राम निश्चय ही गांधीजी के नेतृत्व में होगा और कमेटी उनसे नेतृत्व करने और प्रस्तावित कार्यवाहियों में राष्ट्र का पथ प्रदर्शन करने का निवेदन करती है।

"कमेटी, हिन्दुस्तानियों से उन संकटों और कठिनाइयों का, जो उन पर आएंगे, साहस और मजबूती के साथ सामना करने और गांधीजी के नेतृत्व में एक बने रहकर हिन्दुस्तान की आजादी के नियन्त्रित सैनिकों की भांति उनके आदेशों का पालन करने की अपील करती है। उन्हें यह जरूर याद रखना चाहिए कि इस आन्दोलन का आधार अहिंसा है। ऐसा समय आ सकता है, जब आदेश देना या आदेशों का हमारी जनता तक पहुंच सकना संभव न होगा और जब कोई भी कार्य-समिति काम नहीं कर सकेगी, ऐसा होने पर इस आन्दोलन में भाग लेने वाले प्रत्येक नर नारी को सामान्य आदेशों की सीमा में रहते हुए अपने-आप काम करना चाहिए। स्वतन्त्रता की अभिलाषा और उसके लिये कोशिश करने वाले हर एक हिन्दुस्तानी को खुद अपना पथ-प्रदर्शक बनकर उस कठिन मार्ग पर आगे बढ़ना चाहिए, जहां विश्राम का कोई स्थान नहीं है और जो अन्त में भारत की स्वतन्त्रता और छुटकारे पर ही जाकर समाप्त होता है।

"यद्यपि अखिल भारतीय कांग्रेस समिति ने आजाद हिन्दुस्तान की भावी सरकार के बारे में अपना विचार प्रकट कर दिया है तो भी कमेटी सभी संबद्ध

लोगों के लिये यह बिल्कुल स्पष्ट कर देना चाहती है कि विशाल सामूहिक संघर्ष करके वह कांग्रेस के लिये सत्ता प्राप्त करने का इरादा नहीं रखती। सत्ता जब कभी भी मिलेगी, उस पर हिन्दुस्तान के सभी लोगों का अधिकार होगा।"

प्रस्तावक : जवाहरलाल नेहरू

समर्थक : वल्लभभाई पटेल

इस प्रकार हम देखते हैं कि कांग्रेस के मंच से 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव कितना संतुलित, स्पष्ट, प्रभावकारी, संघर्षशील और आह्वानपूर्ण है। यह सही अर्थ में हमारे लिये आजादी की लड़ाई का सबसे महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है, क्योंकि आजाद भारत की बहुत-सी बुनियादी बातें इसी पर निर्भर हुई।

7 और 8 अगस्त, 1942 को दो दिनों तक इस प्रस्ताव पर वाद-विवाद होता रहा तथा कई मामूली संशोधनों के बाद यह सर्वसम्मति से पारित हुआ, रात काफी होने पर भी प्रतिनिधिगण बैठे थे, इस प्रस्ताव के नियन्ता के मुंह से यह जानने सुनने के लिये कि अब भावी कार्यक्रम की रूपरेखा क्या है? गांधीजी ने लगभग आधी रात को महासमिति के सदस्यों को संबोधित किया, इसके बाद लोग अपने-अपने निवास स्थलों पर जाकर सो गये, लेकिन वे प्रातः का सूरज बम्बई में नहीं देख सके। कुछ ही देर बाद पुलिस आ गई, उसने नेताओं को जगाया और चुन-चुनकर एक-एक नेता को उसके असली मुकाम पर पहुंचा दिया। गांधीजी को पूना के पास यरवदा में आगाखां महल में बंद किया गया, जहां उनके साथ माता कस्तूरबा, महादेव देसाई, मीरा बेन, डा० सुशीला नैयर, प्यारेलाल और सरोजिनी नायडू भी रखे गये।

गांधीजी तथा देश के सभी भागों के सभी वरिष्ठ नेता या तो जेलों में चले गये अथवा फरार हो गये, लेकिन आन्दोलन को जनता ने अपने हाथ में ले लिया। 9 अगस्त से ही भारत के हर हिस्से में क्रान्ति की चिनगारी आग बनकर फूट पड़ी।

करो या मरो

"आजादी के स्पर्श बिना करोड़ों जनता को दुनिया की मुक्ति के यज्ञ में दिल से भाग लेने की और क्या कोई रीति हो सकती है? आज तो जनता के प्राण शोषित हो गये--पीस दिए गये है। उनकी निस्तेज आंखों में तेज लाना हो,तो आजादी कल नहीं, आज आनी चाहिए। इस से मैंने आज कांग्रेस से यह बाजी लगवाई है, या तो कांग्रेस देश को आजाद करेगी या खुद फना हो जाएगी-- "करेंगे या मरेंगे !"

– 8 अगस्त, 1942 की आधी रात में "भारत छोड़ो" प्रस्ताव पर बोलते हुए राष्ट्रपिता महात्मा गांधी।

तब आगे...

बाबू, क्या बताएं, न जाने भगवान ने कहां से मुझमें उस समय यह शक्ति भर दी कि मैं,जैसे पेड़ पर चढ़ते हैं वैसे चढ़ गया टेलीफोन वाले खंभे पर और जय महात्मा गांधी की बोलकर ज्यों लाठी चलाई कि तार तो टूट ही गया, मैं भी धम्म से गिर गया।

उसके बाद?

--हम और विलास सड़सी लेकर रेलवे लाइन के पास गये, इधर-उधर देखा, न कोई आदमी और न कोई गाड़ी-घोड़ा। बस दोनों ने मिलकर जोर लगाया, बहुत मुश्किल से एक स्क्रू ढीला हुआ और 'जय महात्मा गांधी की' बोलना था कि लाइन एने से ओने हो गयी।

--फिर क्या हुआ?

बता दें वह भी साफ-साफ। हल्ला हुआ कि थाने पर कब्जा करना है, बस विलास और हम पहुंच गये वहां, देखा तो पांच--छः सौ की भीड़। सिपाही-दरोगा को यह देखते जड़इया बुखार आ गया। कांपने लगा, क्योंकि वह लोग छः थे और

यहां भीड़ बढ़ती चली जा रही थी। इसलिये दरोगा गिड़गिड़ाकर बोला-आप सभी को जो भी करना है, शांति से कर लें, तोड़-फोड़ न करें और कुछ नुकसान भी न करें। मैं भी तो आप ही के समान इसी मिट्टी का हूं। फर्क यही है कि रोटी के लिये यह पाप भोग रहा हूं"

हां,.. ..आगे.....

--अपने ही गांव का जगदीश। बड़ा हिम्मतवार तगड़ा जवान था। वह तिरंगा लिये हुए थाने के ऊपर चढ़ गया और एक डंडे में खोंसकर उसे फहराने लगा, भीड़ ने तालियां बजाईं और लोगों ने जय-जयकार से गुंजा दिया--महात्मा गांधी की जय, जवाहरलाल नेहरू की जय, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की जय, जयप्रकाश नारायण की जय.....।

उसके बाद

--उसके बाद आपस में ही बहस हो गई कि आग लगाई जाए कि नहीं। कोई कहता था लगा दो आग, कोई कहता था कि दरोगा-सिपाही को भी एक कमरे में बंद करके भून दो। विचार चल ही रहा था कि हम सभी ने देखा-एक कोने में आग की लपटें उठ रही हैं, लोग-बाग इधर-उधर होने लगे कि तभी गोरों और गुरखों से भरी दो लारी आ गई और आते ही फायरिंग शुरू। कौन गिरा, कौन भागा, किसका सिर फटा किसका हाथ टूटा उसकी तो गिनती ही नहीं है, लेकिन हजारों लोग तब तक [illegible] थे और घमासान लड़ाई शुरू हो गई थी। मिलिट्री के सामने हम कितना टिकते और वह भी किसी के हाथ में एक छड़ी तक नहीं। मुझे भी गोली जांघ में लगी और गिर गया, बाद में बेहोशी की हालत में ही जेल के अस्पताल में पहुंचाया गया।

रस ले-लेकर हमारे गांव का सुगरिन न जाने इस तरह के कितने किस्से कहानियां रोज सुनाता है। जेल से जब वह छूटकर आया तो लोगों ने उसका नाम रख दिया--सुराजी भाई, जय हो सुराजी भाई की।

और पूरे देश के शायद ही किसी हिस्से में ऐसे सुराजी भाई न हों, जिन्होंने आजादी की लड़ाई में कुछ न कुछ योगदान न दिया हो।

कैसे हुआ यह सब? किसने उन्हें ललकारा? किसने हवा बहा दी? कौन था वह जिसने देश के नौजवानों को पागल बना दिया? किसने यह जादू-टोना किया कि आपस में हजारों पाँव आगे बढ़ चले तथा हाथों में अतुलित शक्ति आ गई? आखिर हुआ क्या?

7 अगस्त, 1942 को बम्बई में कांग्रेस महासमिति की बैठक और उसमें पारित प्रस्ताव 'अंग्रेजो भारत छोड़ो' और उस के बाद बापू का आह्वान 'यह हमारी आखिरी लड़ाई है करो या मरो 'डू आर डाई'। प्रस्ताव पारित होने के दो तीन घण्टों के अन्दर ही अखिल भारतीय कांग्रेस समिति में भाग लेने आए सभी नेता पुलिस के चंगुल में और 9 अगस्त को भोर होते न होते देश के हर हिस्से में जहाँ जो भी कांग्रेसी नेता मिला वह बंद कर दिया गया। जो छिप सके, वे छिप गये और उनके घरों की कुर्की नीलामी होती रही।

प्रस्ताव में ही यह कहा गया था कि यदि गांधीजी या अन्य सभी नेता पथ प्रदर्शन के लिए बाहर नहीं रहें तो जनता इस सम्बन्ध में सही कदम उठाये, बस हुआ जनता ने, जिसमें अधिक संख्या नौजवानों की थी 'करो या मरो' को मूलमंत्र के समान गांठ में बांधा और सर पर कफन लेकर हजारों लाखों लोग गांवों कस्बों शहरों में निकल पड़े। कुछ करना है। क्या करना है, कोई नहीं जानता, लेकिन कुछ करेंगे और न कर पाए तो मातृभूमि के लिये अपने को न्योछावर कर देंगे।

एक अजीब समा पूरे देश में पैदा हो गया।

हर शख्स नेता बन गया और हर चौराहा 'करो या मरो' का दफ्तर।

इस समय का जीवन्त वर्णन हिन्दी लेखक एवं क्रांतिकारी रामवृक्ष बेनीपुर ने उसी समय लिखा था "देश ने अपने को क्रान्ति के हवन कुंड में झोंक दिया है। क्रान्ति की ज्वाला देश भर में धू धूकर जल रही है। बम्बई ने ही रास्ता दिखाया है। आवागमन के सारे साधन ठप्प हो चुके हैं। देश में जगह जगह रेल की पटरियां उखड़ रही हैं, तार-टेलीफोन का सम्बन्ध-विच्छेद हो चुका है। थानों पर कब्जा किया जा रहा है। कचहरियां वीरान पड़ी हैं। धुआंधार गोलियां चल रही हैं। सड़कों पर

बैरिकेड बन रहे हैं। स्टेशन-घर लूटे जा रहे हैं। जो एकाध गाड़िया चल पाती हैं, वह क्रान्तिकारियों की मर्जी से। नेताओं ने जो सोचा हो, देश की जनता ने 'करो या मरो' के गाधीपाठ को अच्छी तरह हृदयगम कर लिया है।

"लोगों की वीरता और सरकार की नृशसता की ऐसी खबरें आ रही थीं कि रोंगटे खडे हो जाते थे। पटना के विद्यार्थियों ने कमाल किया। वे सेक्रेटेरिएट पर कब्जा करने चले। वहां फौज और सशस्त्र पुलिस का जमघट जुटा था। विद्यार्थियों की टेक थी--कम से कम हम इस पर अपना झडा तो फहराएंगे ही। कशमकश बढती गई, गोलिया चलीं, कई विद्यार्थी वहीं ढेर हो गए : किन्तु अहा ! सामने देखिए, झडा लहराकर रहा। न जाने किस तरह एक विद्यार्थी ऊपर चला गया, झडा लहरा दिया। सामने जो विद्यार्थी दम तोड़ रहे थे, उन्हें इस झडे को देखकर कितनी प्रसन्नता हुई होगी।

"छोटे-छोटे बच्चे बेधड़क तार और टेलीफोन के लम्बे खम्भे पर चढ जाते और उसमें लगे उजले डिब्बे को तोड़कर तार-टेलीफोन की लाइन खराब कर देते। रिक्शे वालों ने तो और भी कमाल किया। घरेलू नौकरों ने तुरन्त अपना सगठन बनाया और यातायात को अवरुद्ध कर देने का जिम्मा अपने ऊपर लिया। पेड़ों की मोटी-मोटी डालों को काटकर, घर की फालतू चीजों का सड़कों पर अम्बार लगाकर, उन्होंने रास्ता जाम कर दिया। एक ओर से सड़कें साफ की जातीं कि पीछे से न जाने कौन लोग कब आकर फिर बैरिकेड्स बना देते। 'शूट एट साइट'—देखते ही गोली मारो का स्थायी आदेश,हथियारबंद पुलिस और सैनिकों को दे दिया गया था किन्तु किसको इसकी परवाह थी।

"सड़कों को खोद डालने और पुलों को तोड़ने के भी व्यापक प्रयत्न हुए। साधारण कुदाल, गैंता, हथौड़ा, छैनी से वह कमाल किया गया कि देखने वालों को आश्चर्य होता। क्या बिना किसी खास औजार के आदमी यह कर सकता है, यह प्रश्न बार-बार उठाया जाता।

"कितने रेलवे-गोदाम लूटे गए, कितनी रायफल छीन ली गईं। देहातों में तो और भी घनघोर हुआ, पुलिस वर्दी फेंककर पनाह मांगती फिरती थी?

जिन्होंने हेठी दिखलाई, जलते हुए थाने की भट्ठी में उन्हें भी झुलसना पड़ा।

"हा, यह इन्कलाब है। बम्बई से आई आवाज— इन्कलाब जिन्दाबाद ! न जाने किसने यह नारा दिया, जो देश के कोने-कोने में फैल गया।"

(जंजीरें और दीवारें : श्री रामवृक्ष बेनीपुरी)

सही मानें में अगस्त-क्राति की जो तस्वीर उन सभी ने दी है, जो इसके दर्शक या नियन्ता रहे हैं, वह आज भी रोमाचित कर देती है। हम शब्दों का मुलम्मा चढ़ा सकते हैं, कल्पना-लोक में विचर सकते है, भाषा की पच्चीकारी कर सकते हैं, लेकिन सवेदना और अनुभूति का वह ज्वार नहीं पैदा कर सकते, जो आखों देखी तथा स्वय भोगी अनुभूतियों में है।

ऐसी ही एक सवेदनात्मक अनुभूति अभी हाल में ही मेरी नजरों के सामने आकर खड़ी हो गई है। हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक डा. शिवप्रसाद सिंह की कलम से निकली, जिसे उन्होंने जवाहरलाल के प्रसंग में 'अधेरी रात का गुलाब' शीर्षक से लिखा है— "स्वतन्त्रता ! इस शब्द का जादू क्या होता है, यह मुझे 1942 के पहले नहीं मालूम था। 1942 के बाद से निरन्तर इसके बारे में सोचता-विचारता रहा हूं। इसके भीतर कितनी परतें हैं, यह भी धीरे-धीरे करके खुलती गई हैं। इसकी आखिरी परत को देखकर ही दास्तोवस्की ने कहा था— "शायद मनुष्य और मनुष्य जाति के लिए इतना अनिवार्य और कुछ नहीं है, जितनी स्वतंत्रता।" अपनी चरमसीमा पर यह अकेलेपन का अभिशाप भी लगे, इसीलिए सार्त्र ने जब कहा कि 'मनुष्य स्वतन्त्र होने के लिए अभिशप्त है' तो असंगत नहीं था। इस स्वतंत्रता के इतने पहलू हैं, इतने विभेद हैं, इतने रूप हैं, फिर भी सबके भीतर यह एक-सी व्याप्त ऐसी अखण्ड सत्ता है कि इसे समझने के लिए इसे जीना जरूरी लगता है।

"1942 के बाद से मैंने इसकी अनेक परतों को समझा, किसी न किसी रूप में शक्ति-भर भोगा और जीया, किन्तु इस जीने में जादू न था, विवशता थी और कर्तव्य की भावना ही थी। जादू तो सिर पर एक बार ही चढ़ा और वह 1942 में ही, जब मैं जमानिया हाई स्कूल में सातवीं कक्षा का विद्यार्थी था। नारा लगाने की

शान्ति न कभी मिली थी और बाग में कुछ पुल को तोड़ने की विवशता उस समय भी था। तार टेलीफोन कट रहे थे, रेल की पटरियाँ उखड़ रही थीं, पुल टूट रहे थे, स्टेशनों, डाकखाना, कचहरियों, सरकारी इमारतों पर तिरंगा फहराने की उमंग का आर पार न था — और तब धीरे-धीरे वह दिन भी आया जब टूटे पुलों को बनाते, पटरियों को ठीक करते, गोरे सैनिकों की 'बाढ़' आई और जगह-जगह गोली चली, बलिया का स्वदेशी राज्य छिन्न-भिन्न हुआ। जनता पर बन्दूक के कुन्दों और संगीनों की वर्षा हुई। आदमी पेड़ों से औंधे मुँह लटका दिए गए। घावों में मिर्च का भुआ दिया गया। धनी-मानी लूटे गए। औरतों पर बलात्कार हुए। 42 का विद्यार्थी आन्दोलन नेताओं के हाथ से बाहर निकल चुका था, हिंसात्मक हो गया था। मन ग्लानि से भरा था। आन्दोलन का उत्तरदायित्व स्वीकार करने के लिए कोई बड़ा नेता तैयार नहीं हुआ। यानी यह सारा तप त्याग जोश निरर्थक था? यह सारी उमंग बेमतलब थी? सितम्बर की बारिश में रोते आसमान के नीचे, असफल- क्रांति के सिपाही सैनिक जनता पर होने वाले अत्याचारों के लिए अपने को दोषी मानकर ग्लानि और लज्जा से सिर झुकाए बैठे रहते, लोगों से मुँह छुपाए इधर उधर घूमते रहते। घर के बड़े बूढ़े हमारी नालायकी, मूर्खता और बचपने को कोस कोसकर अपने दुख के आँसू पोंछ रहे थे - रेल लाइन पर गाँव के लोगों को बेगार पहरा देना पड़ता। खाना खाकर रेलवे की ओर जाने वाली टोली जी भरकर हमें गालियाँ देती। पढ़ाई बन्द थी, कुलविन थे। लज्जा से सिर झुका था। हमने तरुणाई के जोश और उमंग में जिसे बहुत महत और पवित्र कार्य समझ लिया था, उसे अपने ही लोग अनुचित करार देकर विमुख हो गए थे। तभी एक ऐसा दिन आया कि हमने सुना कि जेल से निकलते ही नेहरू ने भाषण दिया कि सन् 42 की क्रांति का उत्तरदायित्व मुझ पर है। तो वह क्रान्ति असफल न थी? शहीदों का खून पानी न था? कुर्बानियाँ अहमकी न थीं। सच उस दिन हमारे पैर खुशी के मारे धरती पर नहीं पड़ते थे। तन मन पर पड़ा स्याह पर्दा जैसे एकबारगी झटके से हट गया था और उस बदली दुनिया में चारों तरफ मेरे आगे बस एक ही तस्वीर थी — जवाहरलाल नेहरू!

इन दो उदाहरणों के बाद किसी उदाहरण की आवश्यकता मैं नहीं समझता। अगस्त क्रान्ति के नाम से किया गया 'भारत छोड़ो आन्दोलन' आज भी उस पीढ़ी के सामने साक्षात है। एक ओर विश्वयुद्ध की विभीषिका, तो दूसरी ओर गांधी की पुकार — 'करो या मरो'। और भारत के लिए विश्व महायुद्ध गौण हो गया, प्रमुख हुआ अपना यह आन्दोलन।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि 'भारत छोड़ो आन्दोलन' पूरे राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम में अपना सबसे महत्वपूर्ण स्थान रखता है, क्योंकि उसने जिस एकजुटता का परिचय दिया, उसने ब्रिटिश सरकार की आंखें खोल दीं। कांग्रेस की स्थापना का प्रारंभिक लक्ष्य, निवेदन आवेदन था, जिसे बड़े कायदे-करीने के साथ देश के बौद्धिक जनों का सहयोग प्राप्त था। गांधीजी के आगमन के बाद और कांग्रेस की बागडोर लेने के बाद स्थिति कुछ और ही हो गई। लगने लगा मानो आम जनता ही कांग्रेस है और कांग्रेस ही आम जनता है। आज भी यह सच्चाई चली आ रही है। किसी गांव या कस्बे में दस बीस लोग इस पार्टी में या उस पार्टी में होते हैं, शेष जो लोग बच जाते हैं, वे आपसे आप अपने को कांग्रेसी मान लेते हैं।

गांधीजी ने असहयोग आन्दोलन, नमक सत्याग्रह, सविनय अवज्ञा आन्दोलन, भारत-छोड़ो आन्दोलन में आम जन को ही आधार बनाया। वे दक्षिण अफ्रीका से ही यह अनुभव लेकर आये थे कि जब तक साधारण जनता किसी आन्दोलन की शिरोरेखा में नहीं आती है, तब तक कोई भी आन्दोलन सफल नहीं हो सकता। अतः उन्होंने अपने कार्यक्रमों का आधार ही गावों-कस्बों के लोगों को बनाया और उनके बीच में गांधी जी की आवाज जादू के समान पहुंचती थी।

भारत-छोड़ो आन्दोलन में भी यही हुआ। एक दिन के लिए भी इसका संचालन करने के लिए गांधीजी बाहर नहीं रहे, लेकिन उन्होंने जनता के नाम 8 अगस्त की रात में ही क्रमबद्ध रूप में चार सूचनाएं प्रसारित कीं –

1. आप किसी के प्रति मन में बैर और द्वेष-भाव न रखें। सभी के प्रति सहानुभूति तथा प्रेम का व्यवहार करें। ईश्वर द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर हम सब दृढ़ रहें।
2. हर एक हिन्दुस्तानी अपने को आजाद समझे। संग्राम छिड़ जाने पर उनके मार्ग दर्शन के लिए कोई नेता बाहर नहीं रहेगा। इसलिए अपने को ही नेता मानकर, अपनी जिम्मेदारी को समझकर, अपना कार्यक्रम स्वयं बनाकर खुद को चलाना होगा।
3. मैंने कांग्रेस को बाजी पर लगा दिया है। यह या तो सफल होगी या मर मिटेगी। यह जो लड़ाई छिड़ रही है, वह सामूहिक लड़ाई है। हमारी योजना में गुप्त कुछ भी नहीं होना चाहिए। हमारी लड़ाई खुली लड़ाई है।
4. मैं इस लड़ाई में नेतृत्व करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले रहा हूं। सेनापति या नियंत्रक के रूप में नहीं, बल्कि आपके तुच्छ सेवक के रूप में। जो सर्वाधिक सेवा करेगा, वही मुख्य सेवक माना जाएगा। मैं तो आप लोगों को जो मुसीबतें और कष्ट झेलने पड़ेंगे, उनमें आपका हाथ बंटाना चाहता हूं।

आन्दोलन की तीव्रता उन स्थानों में अधिक रही, जहां के नेता सशक्त थे। ऐसी जगहों में नेता के न रहने पर भी वातावरण में उनका संदेश गूंजता रहा और वहां के लोगों ने सबसे ज्यादा कुर्बानी दी। उदाहरण के लिए, बिहार प्रान्त का सारण जिला, जहां के डा. राजेन्द्र प्रसाद, बाबू ब्रजकिशोर प्रसाद, मौलाना मजहरूल हक साहब, जयप्रकाश नारायण, महामाया प्रसाद सिन्हा जैसे नेता थे।

गांधीजी ने 'भारत छोड़ो' के मूल प्रस्ताव में और अपने भाषण में भी बार-बार अहिंसा और सत्य इन दो बातों पर जोर दिया। लेकिन नेताओं के अभाव में आन्दोलन जहां-तहां हिंसात्मक हो गया। गांधीजी के लिए सत्य और अहिंसा एक धार्मिक विश्वास था, जबकि कांग्रेस ने उसे एक नीति के रूप में लिया था। हालांकि दोनों सिक्के के एक ही पहलू थे।

जितना ही ब्रिटिश सरकार का दमनचक्र चलता था, गांधीजी अहिंसा पर जोर देते थे और उनका कहना था कि एक भी गोली चलाए बिना ही हम अपने लक्ष्य के निकट पहुंचते जा रहे हैं।

गांधीजी ने 'करो या मरो' का जो नारा दिया था, उसे जनता ने अंगीकार किया, लोगों ने अपनी जान की बाजी लगा दी और स्वयं गांधीजी ने आगाखां महल में कैद होकर अपने जीवन की सबसे बड़ी कुर्बानी दी—महादेव देसाई तथा माता कस्तूरबा का वियोग। उन्होंने 'करो या मरो' को चरितार्थ कर दिया था।

गांधीजी की आजादी की लड़ाई का अर्थ था—स्वराज्य और स्वराज्य को उन्होंने रामराज्य से जोड़ा था। अतः अपने हर कार्यक्रम की आधारशिला ही गांधीजी नैतिक मूल्यों के आधार पर रखते थे।

इस पूरे परिच्छेद में जो सबसे महत्त्व की बात है, वह है 8 अगस्त की रात में 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पारित हो जाने के बाद गांधीजी का भाषण, जिसे यहां अविकल देने का लोभ मैं संवरण नहीं कर पा रहा हूं। वह भाषण काफी बड़ा है, लेकिन यहा उसका सारांश ही दिया जा रहा है जिससे उस समय की पूरी परिस्थिति के साथ ही गांधीजी की मानसिक तैयारी भी समझ में आ सके, क्योंकि यही वह बुनियाद है, जिस पर इस आंदोलन का पूरा महल खड़ा हुआ है—

"एक जमाना था जब मुसलमान कहते थे कि हिन्दुस्तान हमारा मुल्क है। उस समय वे नाटक नहीं करते थे। वे हमारे साथ लड़े थे। खिलाफत में शरीक हुए थे। उनके साथ मैं बरसों रहा। लोग कहते हैं कि मैं भोला हूं। पर इसके माने यह थोड़े ही है कि मैं यह मान लेता हूं। मुझे धोखेबाज बनने के बजाय भोला कहलाना अच्छा लगता है। मेरा तो यह स्वभाव है कि जब तक कोई चीज सामने नहीं आती, मैं एतबार कर लेता हूं। यह चीज प्रस्ताव में भरी है। मुसलमान और हिन्दू भी कहते हैं कि एकता होनी चाहिए। दूसरी सभी कौमों का भी इत्तिहाद होना चाहिए। होता है, तो अच्छा ही है। कुछ लोग मुझसे यह आकर कहते हैं कि तू जब तक जिन्दा है, तभी तक यह बनेगा। लेकिन मेरा हृदय इसे कबूल नहीं करता। जिसे मेरा दिल कबूल नहीं करता उसमें मुझे रस नहीं है। मैं तो जब छोटा बच्चा था, तबसे इस चीज को जानता था। मदरसे में हिन्दू, मुसलमान और पारसी सब थे।

उनसे मैंने दोस्ती की थी। मैं जानता था कि यदि हम हिन्दुस्तान में अमन से रहना चाहते हैं, तो पड़ोसी के फर्ज का भली भांति पालन करना चाहिए। अफ्रीका भी गया तो मुसलमानों का काम ले कर गया और उनका दिल हर लिया। जो मेरे उसूलों के मुखालिफ थे, उन्होंने भी मुझपर विश्वास किया। वे जानते थे कि यह जो बात कहेगा, वह न्याय की ही होगी। वहां से आया, सो भी हारकर नहीं आया। सबको रोते हुए छोड़कर आया। यहां भी वही चीज मेरे सामने पैदा हो गई।

"अगर पाकिस्तान सही चीज है, तो वह जिन्ना साहब की जेब में पड़ा ही है। हर मुसलमान की जेब में पड़ा है। पर अगर वह सही चीज नहीं है तो उसे कौन हजम कर सकता है। तकब्बुरी से तो खुदा भी भागता है, कोई क्या जाने कि जिन्ना क्या नहीं है। जिन्ना साहब बड़े नाराज होते हैं। एकबार उन्होंने लिखा "मेरे खत पढ़कर आपको बहुत दुःख होता होगा। आपको मेरी बात बहुत चुभती होगी, पर मैं क्या करूं। जो दिल में है सो कहता हूं।" मैं उन्हें इसके लिए मुबारकबादी देता हूं। लेकिन आप जो उस चीज को नहीं मानते, उनसे मैं कहता हूं कि आपको जो आप सही मालूम हो वही करें। सबकी राह न देखें। अरब में करोड़ों लोग पड़े थे। लाखों थे उनमें अकेले। उनमें अकेले पैगम्बर साहब की क्या बिसात थी? पर उन्होंने ऐसा नहीं कहा कि जब मेरे साथ करोड़ों होंगे तभी इस्लाम जारी करूंगा। मैं आपसे कहता हूं, जिसे आप न मानें, उसे कबूल न करें। राजाजी से भी मैंने यही कहा। वे कहते थे कि दे दो। दे दोगे तो वे मानेंगे नहीं। मेरी शराफत होगी, लेकिन मैं इस चीज को ठीक नहीं मानता। मैं तो जिन्ना साहब से भी कहता हूं कि जो महज आपको मनाने के लिए बात करते हैं, उन्हें आप कभी कबूल न करें। मेरे पास कई मुसलमान आते हैं वे कहते हैं पाकिस्तान बुरी चीज है पर दे दो। पर पीछे इसका नतीजा क्या होगा? यह बुरी बात है। और जब तक मैं उसे बुरा मानता हूं साथ नहीं दूंगा। पर इसके माने क्या हैं? समझ लें हम मुसलमानों को दबाकर कोई बात करना नहीं चाहते। हम तरह विश्वास कैसे हो सकता है? वह अहिंसा से ही होगा। इसलिए कहता हूं कि जो सच्ची बात है, उसे मान लें। यह मैं कांग्रेस की तरफ से कहता हूं। पंच भी बन सकते हैं। पर उनमें भी हमारा एतबार तो होना चाहिए। उसे भी नहीं मानेंगे, तो आपकी जबरदस्ती नहीं तो क्या है? उसे

कोई कैसे मानेगा? एक जिन्दा चीज के टुकड़े करेंगे? जिन्दा चीज को मारकर क्या लेंगे? हां, हम यह कहते है कि कोई किसी को मजबूर नहीं कर सकता। मुझे तो खुल्लमखुल्ला कहते हैं, ऐसा हिंदू मैं नहीं हूं। कांग्रेस ऐसे हिंदुओं का प्रतिनिधित्व नहीं करती। अगर आप कांग्रेस का एतबार नहीं करते, तो आपके हिन्दुस्तान के नसीब में झगड़े ही झगड़े हैं। पर यह ठीक रास्ता नहीं है। अगर मुझसे खुदा ठीक बुलवा रहा है तो आप इससे मुझे जिन्दा नहीं पाएंगे। अगर चीज सही नहीं है तो तलवार के बल पर लेंगे, यह कहना क्या ठीक है? मुहम्मद साहब ने यह तरीका नहीं बताया।

"मैंने बहुत वक्त लिया। सारी रात सोचता रहा। पर तन्दुरूस्ती की भी फिक्र रखनी पड़ती है, डाक्टरों ने भी कहा है कि संभलकर काम करो। पर जो चीज खुदा ने दे दी है, उसे तो उसके लिए खर्च करना ही है। और अभी तो जबान चल रही है। पहले तो मैं हिन्दू-मुसलमानों की बात करता हूँ। हम एक बन जाएं, सही माने से मान लें, दिल में कोई परदा नहीं रखें और हिन्दुस्तान को विदेशी कब्जे से छुड़ाने के लिए यत्न करें। पाकिस्तान भी तो आख़िर हिन्दुस्तान का ही हिस्सा है। इसलिए पहली बात यह है कि हिन्दुस्तान के लिए लड़ें। अगर ऐसा करेंगे तो बहुत जल्दी कामयाब होंगे। छह महीने तो बड़ी बात है। आज रात को भी ले सकते हैं। पर एक बात याद रखें। हिन्दू-मुसलमान एकता तो चाहिए। पर अगर नहीं मिलती, तो भी आजादी तो लेनी ही है...

"कोई-कोई कहते हैं यह जल्दी होगी। तैयारी की जरूरत है। जितनी मुसाफिरी मैंने की उतनी किसी ने नहीं की, जो जिन्दा है। मैं लोगों को जानता हूं, मेरा तो दिल उनके पास है। और तैयारी का क्या करूं? मेरी तैयारी कच्ची, मेरा लश्कर कच्चा और मैं कच्चा। पर हमला आ गया तो क्या करूं? अब तैयारी कर लूं ! खुदा क्या कहेगा? वह तमाचा नहीं मारेगा? क्या वह यह नहीं कहेगा कि तुझको मैंने जो खजाना दिया, उसे तो निकाल देता। बाकी तो पीछे मैं था ही। मैं सिर्फ हिन्दुस्तान के लिए नहीं लड़ता ! यों तो मेरे पास बहुत सी लड़ाइयां पड़ी थीं। पहले कहते थे परेशान नहीं करेंगे। पर अब ऐसे कब तक बैठेंगे? वे बारह

भाई जूझते है, तब मैं क्यों नहीं जूझूं। आप मेरे दिल को समझ सकते हैं।

"अब क्या करना है वह सुना दूं। आपने रेजोल्यूशन तो पास कर लिया। पर हमारी सच्ची लड़ाई शुरू नहीं हुई। आप मेरे मातहत हो गए। अभी तो वाइसराय से मिन्नत करूंगा। समय तो देना होगा, उस बीच आपको क्या करना है।

"मौलाना साहब ने पूछा कि तब तक कोई कार्यक्रम तो बताइये। मैंने कहा चरखा है। मौलाना साहब निराश हो गए। मैं ने कहा चौबीस घंटे काम करना है, तो कुछ तो चाहिए। इसलिए चरखा बताया। और भी बताता हूं। तब मौलाना खुश हो गए। अब सुनाता हूं, सब क्या कर सकते हैं।

"आप मान लें कि हम आजाद बन गए। आजादी के मायने क्या है? गुलामी की जंजीरें तो छूटीं। उसके दिल से तो छूटी। अब वह तदबीर करता है। अपने मालिक से कहता है कि मैंने गुलामी छोड़ दी। लेकिन आपसे नहीं डरूंगा। आप जिन्दा रखना चाहते हैं, तो जिन्दा रखें। आप मुझे खुराक देते थे पर वह तो मेरी ही पैदा की हुई थी।

"अब बीच में समझौता नहीं है। मैं नमक की सुविधाएं या शराबबंदी को लेने नहीं जा रहा हूं।मैं तो एक ही चीज लेने जा रहा हूं आजादी। नहीं देना है तो कत्ल करें। मैं वह गांधी नहीं, जो बीच में कुछ लेकर आ जाए। आपको तो मैं एक मंत्र देता हूं-- 'करेंगे या मरेंगे, जेल को भूल जाएं। आप सुबह -शाम यही कहें, कि खाता हूं, पीता हूं, सांस लेता हूं, तो गुलामी की जंजीर तोड़ने केलिए। जो मरना जानते हैं, उन्हीं ने जीने की कला जानी है। आज से तय करें कि आजादी लेनी है। नहीं लेनी है तो मरेंगे। आजादी डरपोकों के लिए नहीं। जिनमें करने की ताकत है,वही जिन्दा रह सकते हैं। हम चींटियां नहीं। हम हाथी से भी बड़े हैं, हम शेर हैं।

"पहले तो मेरे सामने अखबार हैं।वे या तो सरकार की आवाज हैं और अगर हमारी आवाज हैं, तो दबकर काम करते हैं। पर वह जंजीर से टूट जाएं। आजादी के लिए सबको बुलाता हूं। आप तो इस मैदान में आ जाएं। अपनी कलम मुझे दे दें। अगर यह भय हो कि सरकार छापेखाने ले लेगी तो मैं इतना ही कहता हूं कि अखबार बंद कर दें।खामखाह जमानत न दें। अगर देना चाहें तो दे

दें पर कलम को ना रोकें। वह भी बहादुरी का काम है। मैंने क्या किया ? इतना बड़ा कारखाना चलता था। सबको बंद कर दिया। और फिर नया प्रेस पैदा हो गया। फिर मैंने तो आपको एक मध्यम मार्ग बताया। आखिरी चीज आपके सामने नहीं रखी। ऐलान कर दें कि अब स्टैन्डिंग कमेटी को छोड़ देंगे। सिर्फ आज़ाद हिंदुस्तान की सरकार को ही मानेंगे। अगर आप बहुत दूर नहीं जा सकते, तो कहें कि आपकी चीज भी देंगे और कांग्रेस की भी देंगे। अगर बरदाश्त नहीं कर सकते, तो नहीं करना है।

"आजादी आ रही है, और इसके लिए तो राजा लोगों से मैं वह भी नहीं मांगता। उनसे कहता हूं कि मैं आपका खैरख्वाह हूं। काठियावाड़ का हूं। मेरे पिता तीन जगह दीवान रहे। आपका नमक खाया। मैं नमकहराम कभी नहीं हुआ। आप के सामने एक नमकहलाल मिन्नत करता है। अब तक आप सल्तनत के रहे, उससे सत्ता पाई। पैसे के लिए। पैसे तो पिताजी ने भी पाए। पर उन्होंने पोलिटिकल एजेंट से लड़ाई की। एक दिन हवालात में भी रहे। उनका मैं लड़का हूं। मेरे जिन्दा रहते आप कुछ काम करेंगे तो आपके लिए जगह है। मेरे पीछे करेंगे तो भी जवाहरलाल नहीं मानेंगे। वह तो कहता है राजा लोग, पूंजीपति, जमींदार किसी के लिए अब जगह नहीं है। वह तो प्लान्ड एकोनामी वाला है।उसकी बहुत सी बातें पी जाता हूं। वह तो उड़ने वाला है। चाहेगा तो हवाई जहाज में बैठकर चीन भी चला जाएगा। पर मेरे पास तो सबके लिए जगह है। एक मंत्र है कि तुझे कोई चीज अपनानी है, तो पहले खुदा को दे दे, उसको छोड़ दें। हिन्दुस्तान में इतने लोग हैं। मैं तो इन्हीं की मार्फत खुदा को पहचानता हूं। वही खुदा है। अगर वह नहीं है तो मैं दूसरे खुदा को नहीं जानता। इसी तरह राजा लोग भी प्रजा से कह दें, राज आपकी ही मिल्कियत है। तब राजाओं को किसी बात की कमी नहीं रहेगी। प्रजा उन्हें दोनों हाथों से देगी। वह राजा रहेगा। वंश-परम्परा भी रहेगी, अगर वे दुनिया की सेवा करते रहेंगे। इसलिए राजाओं से कहना चाहता हूं कि आप गुलामी में न रहें। रहना है तो हिन्दुस्तानियों की सल्तनत में रहें।...

"राजाओं से इस तरह साफ कह दें। और इतने पर वे मारें तो मर जाए।

तेरह हों तो तेरह। कोई बात छिपाकर नहीं करनी है। इस लड़ाई में गुप्तता तो है नहीं।

"अब जज वगैरह से। वे भी कुछ न करें। आज ही इस्तीफा न दें। रोक लें। गर अपनी आजादी कायम रखें। कह दें मैं तो कांग्रेस का आदमी हूं। रानडे ने यही किया था। सिर्फ एक मर्यादा का पालन करूंगा। न्यायासन पर न कांग्रेस का हूं, न सरकार का। आजाद। कोई कानून नहीं जो मुझे यह कहने से मना करे। रानडे जब तक जिन्दा थे,ऐसा ही करते थे। कांग्रेस में बराबर जाते थे, पर भाग नहीं लिया। समाज-सेवा-संघ पैदा कर दिया। उस जमाने में यह कम नहीं था। आज भी जज ऐसा कर सकते हैं। गुप्त हिदायतें निकलें, उनको न मानें। कह दें कि हम तो कांग्रेस के आदमी हैं। यह सरकार को मंजूर हो तो रहें, नहीं तो निकल जाएं।

"अब सिपाही !वे इतना तो कह दें कि अब तक तो हमने अपने दिल की बात छिपाकर रखी, पर अब तो हम कहते हैं कि हम कांग्रेस के हैं।

"कई सिपाही मेरे पास आए, जवाहरलाल के पास भी आए, मौलाना साहब के पास आए और अली भाइयों के पास भी आए थे। सिपाही भी, बड़े-बड़े अफसर भी, पर हम उनको रोकते रहे। पर अब वे ऐलान कर दें कि हम पेट के लिए काम करते हैं, पर आदमी तो कांग्रेस के हैं। आप हमारे ही लोगों पर गोली-लाठी चलाने की बात कहेंगे तो हम नहीं मानेंगे। अपने दुश्मन पर चला देंगे। इतना कह देंगे तो बहुत बड़ी आबोहवा पैदा हो जाएगी। कितने ही एरोप्लेन आएं, हमें परवाह नहीं।

"इसी तरह से प्रोफेसर और विद्यार्थी। उनको भी आज तो खींचना नहीं चाहता। वे भी इतना तो कह दें कि हम कांग्रेस के हैं। वे तो उस्ताद हैं। पर काम तो हमारा ही करते हैं।...

"मेरे दिल में तो कहने को बहुत है। पर सब मैं बाहर कर सकूं, इतना समय नहीं है। मुझे अभी थोड़ा अंग्रेजी में भी बोलना बाकी है। रात हो गई है, बहुत देर हो गई है,फिर भी इतनी शांति से, इतने ध्यान से आपने मुझे सुना, इसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूं। सच्चे सिपाही ऐसा ही करते हैं।

"बाइस वर्ष तक बोलने-लिखने में मैंने संयम रखा है, ताकत इकट्ठी की है। जो अपनी ताकत हमेशा खर्च नहीं करता वह ब्रह्मचारी पाक-दामन कहा जा जाता है। वह हमेशा जीभ पर काबू रखकर दबी जबान से बोलेगा। जिन्दगी भर मेरा प्रयत्न इस दिशा में रहा है, फिर भी आज इतने सारे लोगों को इतनी रात तक रोक रखकर आपके ऊपर जबरदस्ती करके भी—मुझे आपको आज जो कहना चाहिए था, वह कह दिया। उसका मुझे पश्चाताप नहीं है। आपकी मार्फत सारे हिन्दुस्तान को कह दिया।"

गांधीजी के उपर्युक्त भाषण का आजादी की लड़ाई में विशेषकर 'भारत छोड़ो'आन्दोलन में विशेष महत्व है। आजादी की लड़ाई को जानने के लिए गांधी को जानना भी जरूरी है। छोटे-छोटे वाक्य बिन्यास और बात को सादगी तथा सच्चाई के साथ रखना गांधीजी की अप्रतिम खूबी कही जा सकती है। वह भाषण नहीं देते थे बल्कि अपनी बात कहते थे और बात जिसे सबके सब समझ सकें।

गांधीजी सही मायनों में एक विचार के समान थे और उसका असर भारतीय जनमानस पर पड़ता गया। इतिहास के लिए यह भी एक अनोखी बात थी कि मुट्ठी भर हाड़-मांस के एक अर्धनग्न फकीर ने ब्रिटिश साम्राज्य को बिना किसी फौज बम के दहलाकर रख दिया।

गांधीजी ने 'करो या मरो' का जो मूलमंत्र दिया, उस पर बिना किसी तर्क के देश आंख मूंदकर चला और उसका ही परिणाम हुआ कि 1942 के पांच वर्षों के अन्दर ही अंग्रेजों को यहा से कूचकर जाना पड़ा।

गांधीजी ने इसके लिए जनसहयोग का जो अद्भुत नजारा दिखलाया, वह भी इतिहास में शायद ही कहीं देखने को मिले कि नेता जेल में और उसके मंत्र का जाप घर-घर में।

लोकजीवन में भारत-छोड़ो आन्दोलन ने एक नई जाग्रति पैदा कर दी और दमन के बावजूद भी इस तरह के अनेकों लोकगीत भारतीय कंठ के हार बने, जिनका अब ऐतिहासिक महत्व है-

[illegible]

हम गरीबों के गले का हार वंदे मातरम्।।

सर चढ़ों के सर मे चक्कर उस समय आता जरूर

कान में पहुंची जहां झनकार वंदेमातरम्।।

जेल में चक्की घसीटे भूख से भी मर रहा

उस समय भी बक रहा बेजार वंदेमातरम्।।

मौत के मुंह में खड़ा है, कह रहा जल्लाद से

भौंक दे सीने में वह तलवार वंदे मातरम्।।

डाक्टरों ने नब्ज देखी सर हिलाकर कह दिया

हो गया इसको तो यह आजाद वंदे मातरम्।।

ईद, होली और दशहरा, शुबरात से भी सौ गुना

है हमारा लाड़ला त्यौहार वंदे मातरम्।।

जालिमों का जुल्म भी कफूर सा उड़ जाएगा

फैसला होगा सरे दरबार वंदे मातरम्।।

तराने जो अब भी गूंजते हैं

जंजीरों से चले बांधने
आजादी की चाह !
घी से आग बुझाने की
सोची है सीधी राह !
हाथ-पांव जकड़ों, जो
चाहो है अधिकार तुम्हारा
जंजीरों से कैद नहीं,
हो सकता हृदय हमारा !

—सोहनलाल द्विवेदी

तराने जो अब भी गूंजते हैं। हां, आजादी आए कितने साल हो गए, गुलामी की बेड़ी उसके साथ-साथ ही टूटी और राष्ट्रपिता बापू, पं० जवाहरलाल नेहरू, डा. राजेन्द्र प्रसाद ,नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, सरदार वल्लभभाई पटेल , मौलाना आजाद, सरोजिनी नायडू, राजगोपालाचारी कोई भी तो हमारे सामने आज सशरीर नहीं है, भले उनकी कीर्ति किसी न किसी रूप में हमारे सामने आज भी यथावत् है। लेकिन जनश्रुतियों में उनमें से हर कोई जीवित है और साबित कर रहा है कि जीवित कौम का इतिहास कभी भी काल-कवलित नहीं होता।

पुरानी उक्ति है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है। लेकिन वह जमाना तो ऐसा था कि कोई चीज छपी नहीं कि जब्त। लेकिन गाथाएं, लोकगीत, बिरहा की तान, होली और कजरी की धुन, शादी और छठी में गाने वाले गीत—हर जगह तो बस एक ही पुकार थी—

जिसे पहनकर हो जाएं,

आजाद रे रंगरेजबा।

पूरा का पूरा लोक-साहित्य, उस युग के इस तथ्य को द्योतित कर रहा है कि जन-जीवन में इसकी चेतना व्याप्त हो गई थी। राष्ट्रीय आन्दोलन, गांधी, देश की आजादी, राष्ट्रीय नेताओं का व्यक्तित्व सब जनचेतना में इस प्रकार व्याप्त हो गए थे कि मात्र साहित्यकार या बौद्धिक लोग ही इससे प्रभावित न थे, वरन् आम जनता, गांव की पनिहारिनें, भैंस-गाय चराने वाले चरवाहे तक अपनी धुन में राष्ट्रीय चेतना के गीत गाते थे–

कलियुग में गांधी प्रगट हुए अंग्रेजी राज मिटाने को।
श्रीराम के साथी लक्ष्मण थे, श्रीकृष्ण के साथी बलदाऊ
अब गांधी के पास जवाहर हैं, अंग्रेजी राज मिटाने को

कलियुग में ....

दर्जनों ऐसे गीत गाने जो हम लोगों ने बचपन में सुने थे और गुनगुनाए थे, आज तक कभी भूल नहीं पाते हैं–

कदम-कदम बढ़ाए जा, खुशी के गीत गाए जा
यह जिन्दगी है कौम की, तू कौम पर लगाए जा।

* * *

विजय विश्व तिरंगा प्यारा झंडा ऊंचा रहे हमारा,
सदा शक्ति बरसाने वाला
प्रेम सुधा सरसाने वाला
वीरों को हरषाने वाला
मातृभूमि का तन मन सारा, झंडा ऊंचा रहे हमारा।

* * *

आजाद हिन्द फौज को हम मुक्त करेंगे,
परवाह नहीं गोली की मार सहेंगे।

इसी प्रकार बहादुरशाह जफर और रामप्रसाद 'बिस्मिल' के निम्नलिखित शेर बच्चे-बच्चे की जबान पर थिरकते नजर आते थे--

गाजियों में. बू रहेगी, जब तलक ईमान की
तख्ते लन्दन तक चलेगी, तेग हिन्दुस्तान की

और इसी प्रकार--

सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है
देखना है जोर कितना, बाजुए कातिल में है

उस समय के साहित्यकारों में अधिकांश ने जो भी लिखा उसेजनता ने माथे से लगा लिया। मैथिलीशरण गुप्त जी की 'भारत भारती' लोगों के गले का हार बनी, तो सुभद्राकुमारी चौहान की कविता 'खूब लड़ी मरदानी, वह तो झांसी वाली रानी थी' ने मुरदों में भी जीवन का संचार किया। पन्तजी ने 'ग्राम्या' में भारतीय गांवों का सजीव चित्रण किया तो बाबू रघुवीर सहाय की 'बटोहिया' और मनोरंजन प्रसाद की 'फिरंगिया' ने जन--जागरण का काम किया--

सुंदर सुभूमि भइया भारत के देसवा से
मोरे प्रान बसे हिम रे बटोहिया
एक द्वार मेरे राम हिम कोतवलवा से,
तीन द्वार सिन्धु घहरावे रे बटोहिया
जाऊं-जाऊं भइया रे बटोही हिंद देखि आऊं,
जहां सुख झूले धान खेत रे बटोहिया

उन्हीं दिनों 'प्रसाद' जी ने--

हिमाद्रि तुंग शृंग से, प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला, स्वतंत्रता पुकारती
अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो
प्रशस्त पुण्य-पंथ है, बढ़े चलो, बढ़े चलो

लिखकर नया जोश पैदा किया। निराला भी पीछे नहीं रहे और 'जागो फिर एक बार' की दुंदुभि फूंकी और स्वतंत्रता संग्राम के अनन्य सेनानी माखनलाल

चतुर्वेदी और बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने जो आह्वान गीत लिखे, उनसे चिंनगारियों की जगह ज्वालाएं फूटीं–

क्या देख न सकती जंजीरों का गहना

हथकड़ियां क्यों? ब्रिटिश राज का गहना

कहा 'एक भारतीय आत्मा ने, वहीं 'नवीन' जी की–

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे सब उथल-पुथल मच जाए

का उद्‌घोष किया।

उर्दू के शायर ऐसे मौकों पर एक कदम और आगे बढ़ आए–

सारे जहां से अच्छा, हिन्दुस्तां हमारा
हम बुलबुलें हैं इसकी, ये गुलसितां हमारा
यूनानों, मिस्र, रूमा सब मिट गए जंहां से
अब तक मगर है बाकी नामोनिशां हमारा
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी
सदियों रहा है दुश्मन दौरे ज़मां हमारा !

* * * —इकबाल

वतन का मैं वकार हूं
वतन की मैं बहार हूं
वतन का जां-निसार हूं
उठा हूं जोश में भरा, करूंगा हश्र में बपा
सिपाही मेरा नाम है
वतन पे मरना काम है

* * * —असलम लखनवी

अय वतन, अय वतन, अय वतन !
जाने मन, जाने मन, जाने मन !
सोने वालों को एक दिन जगा देंगे हम,

रस्मो-राहें गुलामी मिटा देंगे हम
तेरे वैरी के टुकड़े उड़ा देंगे हम,
आस्मानों-जमीं को हिला देंगे हम
कौन कहता है कमजोर निर्बल है तू
हर तरफ खूं के दरिया बहा देंगे हम

* * *

जिस तरफ से पुकारेगा हिन्दुस्तां,
उस तरफ ही वफ़ा की सदा देंगे हम
अय वतन, अय वतन
सर से बांधे हुए हैं तिरंगा कफन

—सागर निज़ामी

* * *

सच किसी दाना ने था ये कौम से अपनी कहा
जो कि हामी कौम के हैं, उनका हामी है खुदा
देख लो ! मुमताज़ दुनिया में वही कौमें हैं आज
कौम पर कुर्बान है जिनका हर एक छोटा बड़ा

—अलताफ हुसैन 'हाली'

इसी तरह के हजारों नग्मे, शेर, रूबाइयां, गजलें तथा तराने उर्दू के तत्कालीन साहित्य में मिलते है। शायद ही उस दौर का कोई ऐसा शायर हो जिसने वतन की याद में कौमी तराने न छेड़े हों। 'जोश' मलीहाबादी ने लिखा ही था—

वक्त लिखेगा कहानी एक नये मजमून की
जिसकी सुर्खी को जरूरत है तुम्हारे खून की

1857 में हिन्दुओं और मुसलमानों ने कंधे से कंधे मिलाकर विदेशी हुकूमत के खिलाफ जो जंगी आजादी छेड़ी, उसका इजहार कवियों और शायरों दोनों मे

देखने को मिलता है। आजादी की लड़ाई अहिंसात्मक थी, जिसका नेतृत्व गांधीजी कर रहे थे, अतः अनेक कवियों ने गांधीजी और राष्ट्रीय आह्वान का स्वर एक साथ मिलाकर कहा--

चल पड़े जिधर दो डगमग में, चल पड़े कोटि पग उसी ओर
पड़ गई जिधर भी एक दृष्टि, गड़ गये कोटि दृग उसी ओर
जिसके शिर पर निज धरा हाथ, उसके शिर-रक्षक कोटि हाथ
जिस पर निज मस्तक झुका दिया, झुक गये उसी पर कोटि माथ

श्री सोहन लाल द्विवेदीजी की यह कविता प्रत्यक्षः गांधीजी पर है, लेकिन देश का यह अभियान-गान भी है। द्विवेदीजी ने उस युग में सैंकड़ों की संख्या में जो राष्ट्रीय कविताएं लिखीं, उसे सहज भाषा, शैली और कथ्य के कारण युवकों ने अपनाया। इसी प्रकार जवाहरलालजी के प्रति द्विवेदीजी की यह कविता उस जमाने में काफी प्रसिद्ध हुई--

शुद्धोधन के सिंहासन के सुख की ममता त्याग
किस गौतम के यौवन में जागा यह परम विराग?
बोधिवृक्ष है नहीं, हिमाचल की छाया के नीचे
कौन तपस्वी तप करता है करुणा-लोचन मींचे?
बोल उठीं गंगा की लहरें'--यह है वह नरनाहर
जिसकी जग में विमल ज्योति जननी का लाल जवाहर
ग्राम-ग्राम में, नगर-नगर में, गृह-गृह में जा-जाकर
आजादी की अलख जगाता तन में भस्म रमाकर
यह नेता है कोटि-कोटि तरुणों के उर का स्वामी
सारा भारतवर्ष आज है इसका ही अनुगामी
ओ भारत के तरुण तपस्वी ! तुम प्रतिपल जन-जन में
स्वतंत्रता की ज्वाला बनकर धधक उठो मन-मन में !

इसी भांति 'सुना रहा हूं, तुम्हें भैरवी !जागो मेरे सोने वालो' नामक कविता ने उस युग को उद्वेलित-अनुप्राणित किया।

इसी युग में कवि दिनकर ने हुंकार भरा--
सदियों की ठंडी बुझी राख सुगबुगा उठी
मिट्टी सोने का ताज पहन इठलाती है
दो राह, समय के रथ का घर्घर नाद सुनो
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।

केवल हिन्दी और उर्दू में ही यह राष्ट्रीय स्वर न उभरा, वरन् पूरे भारतीय साहित्य में आजादी के तराने साहित्य का एक अंग बन कर सोए राष्ट्र को जगाने लगे। उनका माध्यम गद्य और पद्य दोनों थे। आखिर बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय का 'वंदे मातरम्', करोड़ों कंठो का हार बना, जिसे आज भी कोई भूलता नहीं है--

सुजलां सुफलां मलयजशीतलाम्
शस्य श्यामलां मातरम्
वन्दे मातरम् !

कवि-गुरु रवीन्द्रनाथ टैगोर की कविता--
जन-गण-मन अधिनायक जय हे, भारत भाग्य विधाता !
पंजाब-सिन्धु-गुजरात-मराठा, द्राविड़-उत्कल-बंग
विन्ध्य हिमाचल, यमुना-गंगा, उच्छल जलधि तरंग
तव शुभ नामे जागे, तव शुभ आशीष मांगे
गाहे तव, जय-गाथा............

इसे ही हमने अपना राष्ट्रगान माना।

राष्ट्र की पुकार पर और क्रान्ति की अगुवाई में जो वर्ग सबसे अधिक मुखर होकर इसमें कूदा है अथवा जिसने अपनी कलम को गिरवी नहीं रखा, वह साहित्यकारों-कलाकारों और बुद्धिजीवियों का वर्ग माना जाता रहा है। गांधीजी की पुकार पर भारत में भी हजारों लोगों ने अपनी नौकरियों को लात मारी, दर-दर की ठोकरें खाते रहे और वतन की आजादी के गीत गाते रहे। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने जलियांवाला बाग-कांड तथा सविनय-अवज्ञा आन्दोलन की पुकार पर अपना विशेष सम्मान 'नाइटहुड' को ब्रिटिश-सरकार को वापस करते हुए

लिखा—"ऐसा समय आ गया है जब सम्मान में मिले बिल्लों ने मानमर्दन के भोंडे संदर्भ में हमारी शर्म को उघाड़कर रख दिया है। जहां तक मेरा सवाल है, मैं उन सभी विशिष्टताओं का परित्याग करके अपने उन देशवासियों के साथ खड़ा हूं जिन्हें तुच्छ समझकर ऐसे अपमानों द्वारा पीड़ित किया गया है, जो मनुष्य के लिए नहीं हैं।"

उस जमाने में आग उगलने वाली अनेक कविताएं लिखी गईं, जिनका एक संग्रह अभी हाल में ही 'जब्तशुदा नज्में और गजलें' के रूप में हमारे सामने है, लेकिन देहातों-कस्बों और छोटी-छोटी पत्र-पत्रिकाओं तथा पर्चों में विपुल साहित्य आया, उसमें से बहुत कम सुरक्षित है, लेकिन बहुतों की जुबान पर अभी भी उस जमाने की पंक्तियां फुदकती हुई सुनाई देंगी—

कुछ आरज़ू नहीं है, है आरज़ू तो यह है
रख दे कोई जरा सी, खाके-वतन कफन में

* * *

यह माना तुमको शिकवा है फलक से खुश्क साली का
हम अपने खून से सींचें, तुम्हारी खेतियां कब तक?

* * *

ऐ कौम देख तो तेरे हालत को क्या हुआ?
हैरत में आइना है कि सूरत को क्या हुआ?
जिसने बड़े बड़ों के थे छक्के छुड़ा दिए
उस शूर-वीर कौम की हिम्मत को क्या हुआ?

जिन देशों में भी क्रान्तियां हुई हैं, वहां के लेखकों-कवियों ने उसमें रक्त का संचार किया है, यह बात मैं पहले ही लिख चुका हूं। भारत से पहले जो आदर्श थे, वह फ्रांस की राज्य क्रान्ति, रूस की लाल क्रांति तथा अपने जनतंत्र की रक्षा के लिए ऐसे ही अनेक छोटे-बड़े रक्तबीज। यही कारण है जो लिखने में साहित्यकारों ने वाल्टेयर, गोर्की, टाल्सटाय को भी अपने सामने आदर्श रूप में रखा।

जमील मज़हरी साहब जैसे शायर ने 'भारतमाता' को याद करते हुए सीधे और सच्चे शब्दों में जो कुछ लिखा, वही अक्स कमोबेश हर साहित्यकार की लेखनी में देखने में आता है–

ओ माता गौतम की माता, अरजुन और भीषम की माता
टीपू की मां, अकबर की मां, सतवन्ती मां, बलवन्ती मां
शक्ती तुझसे, सत तुझसे है, मत तुझसे, हिम्मत तुझसे है
शौरिश दे, सौदा दे, सर दे, दिल का दीया फिर रोशन कर दे
दारो रसन का खेल सिखा दे, नाम पे अपने भेंट चढ़ा दे
टीपू और पोरस पैदा कर, एक उठे तो दस पैदा कर
देश का हर सेवक आंधी हो, हर बच्चा 'आजादे'—गांधी हो
हर पुत्री हो सरोजिनी माई, हर माई हो लक्ष्मीबाई
हर दिल में एक तूफां कर दे, शोला भर दे, बिजली भर दे
जी में अपनी लगन पैदा कर, मन उजला कर, तन उजला कर
जीवन दे, जीवन का फल दे, शक्ति दे, हिम्मत दे, बल दे
जंजीरें हैं भारी माता !
प्यारी माता, प्यारी माता !
माता, माता, प्यारी माता !
बच्चे तुझ पर वारी माता !

यह देश की आजादी के लिए आवश्यक भी था कि गांधीजी ने जब 'करो या मरो' का नारा दिया, कांग्रेस ने 'अंग्रेजो, भारत छोड़ो' का प्रस्ताव पारित किया और हजारों लोग गोलियों के शिकार हुए, लाखों जेलों की सींखचों में बंद हुए तो कविकलाकार वैसे समय चुप कैसे रहता। हर गली,कूचे-कस्बे से तराने फूट रहे थे—

विपत्तियों के बादलों को चूमकर जगा रही,
है हिन्द जयति हिन्द जय, हिन्द को जगा रहा

महासमुद्र हिल उठा, जहान देखता रहा,

स्वतंत्रता की दुंदुभी, यह कौन है बजा रहा।

—कवि प्र

कई रंगो-रूपों-छंदों तथा वाक्यविन्यासों में आजादी के तराने गाये लेकिन सबों का स्वर एक ही था—

या तो स्वतंत्र हो जाएंगे

या तो हम मर मिट जाएंगे

फांसी के तख्ते से अमर शहीद बिस्मिल ने भी यही कहा था—

अब न अहले बलवले हैं और न अरमानों की भीड़

एक मिट जाने की हसरत, बस दिले 'बिस्मिल' में है

आने वाली पीढ़ियां जब कभी भी आजादी के दीवानों को याद करेंग निश्चित रूप से उनके साथ ही आजादी के इन तरानों को भी याद करेंगी, जि छाप हमारे स्वतंत्रता के इतिहास पर सदा-सदा के लिए अमिट है।